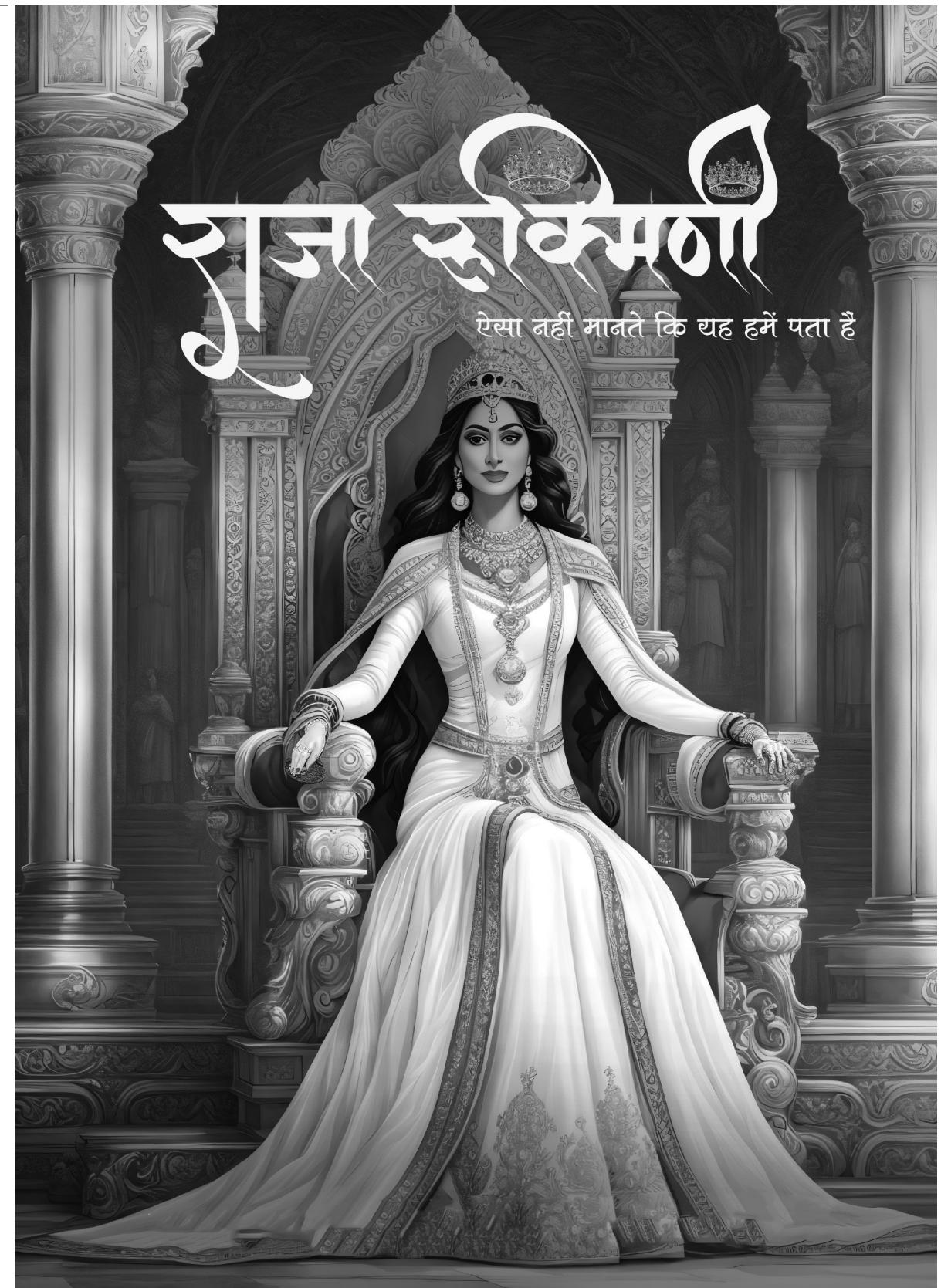


राजा राक्षसी

ऐसा नहीं मानते कि यह हमें पता है



*** दिव्य आशीर्वाद ***

सच्चारित्रयुडामणि, कर्मसाहित्यनिष्ठांत, सिद्धांत महोदधि

यू. आ. श्री ग्रेमसूरीभरजी म.सा.

एवं उनके विनेय संघटितयितक गच्छाधियति

य.पू. आ. श्री भुवनभानुसूरीभरजी म. सा..

सिद्धांतदिवाकर गच्छाधियति

य.पू. आ. श्री जयधेष्टसूरीभरजी म.सा.

युगप्रधानाचार्यसम शासनग्रभावक गुरुदेव य.पू. यं श्री चन्द्रसेतुर विजयजी म.सा.

*** विश्रादाता ***

प्रशांतमूर्ति सरलस्वभावी गच्छाधियति य.पू. आ. श्री. राजेन्द्रसूरीभरजी म.सा.

सरलस्वभावी य.पू. आ. श्री हंसकीर्तिसूरीभरजी म. सा.

- लेखक -

मु. गुणहंस वि.

-अनुवादक :-

सा. श्री शीलांगयशा श्रीजी म.सा

*** प्रकाशक ***

कमल प्रकाशन ट्रस्ट

१०२-ए, चन्द्रधातु, कोमलेक्स, आनंद नगर, योस्ट ओफिस के सामने भद्रा,
यालडी, अहमदाबाद-७.

Live Contacts :

Hitesh Bhai - Mumbai

(98209 28457)

Laksh Bhai - Chennai

(81488 36505)

Hemanth Bhai - Surat

(98253 56430)

Pritesht Bhai Shah - Rajkot

(98790 18318)

Rajendra Bhai - (Ahmedabad)

(94265 84295)

Designed & Printed By :

Dharamveer : 91763 64790

Copies: 2000, Tithi & date :

श्री महार्वी जन्म वाचन, भाद्रवा शुक्री १ 4 SEPTEMBER 2024

॥ राजा रुक्मिणी ॥

॥ अनुक्रमणिका ॥

१	दुष्काल में पिता भूख के कारण से सोचते हैं 'बेटी को काटकर खा लूँ।'	११
२	पिता बेटी को बेचता है, और उस संस्कार के कारण से विदेश में जाकर लड़कियों का अपहरण करके बेचने का व्यापार करता है।	१२
३	दुष्काल में गोविंदपत्नी के भूखे बच्चों की खाने के लिए लूटफाट	१४
४	बड़ा बेटा सिर्फ चावल के लिये सग्गी माता को खून की धमकी देता है	१६
५	जातिस्मरण प्राप्त हुई गोविंदपत्नी का अद्भुत उपदेश	१७
६	● धर्म की महिमा	२०
७	● चारित्रधर्म के आचारों का वर्णन	२१
८	● गोविंद आदि को वैराग्य	२६
९	● गोविंद आदि की गुणधर्म महात्मा के पास दीक्षा और मोक्ष	२७
१०	● सूर्यश्री जन्म के समय ही माता बिना की क्यों बनी ? उसका कारण	३०
११	● गोविंदपत्नी का पूर्वभव = गच्छाधिपति	३१
१२	● गच्छाधिपति कैसे होते हैं ? अद्भुत वर्णन	३२
१३	● गच्छाधिपति का जीव मरकर स्त्री क्यों बना ?	३३
१४	● राजकुमारी रुक्मिणी विधवा बनी	३३
१५	● राजकुमारी रुक्मिणी शील की पवित्रता के लिए जलकर मरने के लिए तैयार	३४
१६	● राजकुमारी रुक्मिणी राजा रुक्मिणी बनती है	३६
१७	● रुक्मिणी का एक रुपवान युवान के प्रति रुप देखकर कामविकार	३६
१८	● शीलसन्नाह युवान रुक्मिणी का राग जानकर प्रचंड वैराग्य पाता है	३७
१९	● शीलसन्नाह अन्य राजा के पास रहता है, रुक्मिणी नाम भी बोलता नहीं है	३९
२०	● शीलसन्नाह 'रुक्मिणी' नाम बोला, और राजा आदि को भोजन में बड़ा विघ्न	४१
२१	● शीलसन्नाह खुद के शील की परीक्षा करने के लिए दुश्मनों के पास सामने से जाता है	४१
२२	● शील के प्रभाव से शील पर शस्त्रों के घाव लगते नहीं हैं	४३
२३	● साधुवेष के साथ शासनदेवी का आगमन	४५
२४	● शासनदेवी शीलधर्म का महिमा बताती है	४६
२५	● शीलमुनि के उपदेश से राजा आदि की दीक्षा	४८
२६	● शीलमुनि का पूर्वभवः छोटे सावद्य वचन के कारण से पूरा जीवन मौनव्रत	४८
२७	● राजा रुक्मिणी की दीक्षा	४९
२८	● साध्वी रुक्मिणी चक्षुकुशीलता का पाप छुपाती है	५१
२९	● शीलमुनि की साध्वी को शुद्ध-आलोचना के लिए हितशिक्षा	५३

३०	● रुक्मिणी का मायामृषावाद और तब ही मृत्यु	४५
३१	● रुक्मिणी के १ लाख भव	५५
३२	● साधुजीवन के बड़े तीन पापः (१) सचित्त पानी का उपयोग	५६
३३	(२) अग्नि का उपयोग, (३) मैथुन सेवन	
३४	● सूर्यश्री ग्वालिन के साथ गोकुल में	५७
३५	● पिता सूर्यशिव को पुत्री सूर्यश्री पर कामवासना	५९
३६	● धनवान् सूर्यशिव ने राजा को खुश किया	६०
३७	● सूर्यशिव का सग्गी पुत्री सूर्यश्री के साथ शादी + भोगसुख	६१
३८	● सूर्यशिव को पता चला 'मेरी नई पत्नी ही मेरी प्यारी बेटी है ।'	६२
३९	● सूर्यशिव का आत्महत्या के लिए निष्कल प्रयास	६३
४०	● सूर्यशिव की जगानंद मुनि के पास दीक्षा केवलज्ञान	६४
४१	● सग्गे पिता से गर्भवती बनी हुई सूर्यश्री का नौंवें महीने गर्भपात के लिए विचार और मृत्यु, छह्ती नारक में गमन	६७
४२	● सूर्यश्री का पुत्र सुसढ साधु बनता है, तप करता है, परंतु जयणा नहीं पालता	६८
४३	● सुसढ तपरुपी प्रायश्चित्त करता है, परंतु संयमयोगों में जयणारुपी प्रायश्चित्त नहीं करता	६९
४४	● तप महान ? या संयम में यतना ? प्रभु का जवाब	७०
४५	● संयम जयणा पालनेवाले का दीर्घ संसार होता है सही ?	७१
	● प्रश्न नं.१ दूसरे की मौत की इच्छा करनेवाले को खुद की मौत लाने का कर्म बंधता है ? या दूसरे के मौत लाने का कर्म बंधता है ?	७४
	● प्रश्न नं.२ इतने कूर सूर्यशिव का मोक्ष कैसे हुआ ?	७५
	● प्रश्न नं.३ बेटी को मजबुरी से बेचा, परंतु फिर लड़कियों को बेचने का व्यापार क्यों चालु कर दिया सूर्यशिव ने ?	७६
	● प्रश्न नं.४ बेटा सिर्फ चावल के लिये सग्गी माता को खून की धमकी देगा सही ?	७८
	● प्रश्न नं.५ 'लद्धिलियं च बोहिं ।' इस गाथा का रहस्यार्थ क्या ?	७९
	● प्रश्न नं.६ सुलभबोधि और दुर्लभबोधि यानि क्या ?	८१
	● प्रश्न नं.७ रुक्मिणी माया के प्रभाव से एक लाख भव के बाद स्त्री बनती है, यह कैसे ?	८३
	● प्रश्न नं.८ शास्त्रकार स्त्रीयों को धिक्कारते हैं क्यों ?	८४
	● प्रश्न नं.९ लक्षणा और रुक्मिणी... दोनों का पाप समान है, फिर भी एक का ८० चौबीसी संसार, दूसरे का सिर्फ एक लाख भव ही... ऐसा क्या ?	८६
	● लक्षणा और रुक्मिणी के बीच बड़े... छः भेद हैं ।	८७
	● प्रश्न नं.१० पवित्रशीलवाली रुक्मिणी को अचानक चक्षुकशीलता क्यों प्रगट हुई ?	८९
	● प्रश्न नं.११ रुक्मिणी की वासना जानकर शील को सीधा मरने का विचार किसलिये आया ?	९०
	● प्रश्न नं.१२ शील ने राजसभा में मिछ्छा मि दुक्कड़ क्यों कहा ?	९२
	● प्रश्न नं.१३ चक्षुकशील का नाम लेने मात्र से भोजन नहीं मिले, यह बात किस तरह बराबर है ?	९१

● प्रश्न नं.१४	शील ने किस गुरु के पास दीक्षा ली ?	९६
● प्रश्न नं.१५	शील के पास कितनी देवीयाँ आई थी ?	९७
● प्रश्न नं.१६	देव साधु पर सचित्त पुष्पों की वर्षा कर सकते हैं ?	९७
● प्रश्न नं.१७	सिर्फ एक सावधावचन बोलने का प्रायश्चित्त पूरी जिंदगी का मौन किस तरह हो सकता है ?	९८
● प्रश्न नं.१८	शीलमुनि ने रुक्मिणी के पास दीक्षा के समय ही आलोचना क्यों नहीं करवाइ ?	१००
	● अतिशय गंभीर और ध्यान में लेने जैसा अमोघ तत्त्व	१०२
● प्रश्न नं.१९	संलेखना यानि क्या ?	११०
● प्रश्न नं.२०	पादपोपगमन अनशन यानि क्या ?	११०
● प्रश्न नं.२१	‘चारित्रवाले भव उत्कृष्ट से आठ ही !’ इसका रहस्य क्या ?	१११
● प्रश्न नं.२२	‘चारित्रियुक्त भव कितने ?’ इसका सार.	११३
● प्रश्न नं.२३	ग्वालिन और सूर्यश्री प्रतिबोधित क्यों नहीं हुए ?	११६
● प्रश्न नं.२४	सूर्यशिव सग्नी बेटी को क्यों पहचान नहीं सके ? महापापी सूर्यशिव उस ही भव में मोक्ष में गया, और सूर्यश्री संसार में भटके है... ऐसा क्यों ?	११७
● प्रश्न नं.२५	सुसढ जयणा नहीं पालने के कारण से, तप करने के बावजूद लंबा संसार भटका, यह बात क्या उपदेश देते हैं ?	१२८
● प्रश्न नं.२६	जयणा का जैनधर्म में महत्त्व कितना ?	१२०
● प्रश्न नं.२७	सभी जगह जयणा समान होती है ?	१२१
● उत्सर्ग + अपवाद	जयणा के १० उदाहरण + व्याख्या...	१२२



प्रस्तावना

पूज्य गुरुदेवश्री के मुख से सुना था कि “शिष्य हिंसादि जो पाप करता हैं, वह गुरु को चारगुणा लगता है और मैथुन में जो पाप करता है, वह गुरु को सोलह गुण होकर लगता है।”

इसका शास्त्रपाठ ढूँढने के लिये श्री महानिशीथ ग्रन्थ खोला। वह पाठ तो नहीं मिला, परंतु उसमें ऋक्मणी की कथा नजार के सामने आई। उत्कंठा के साथ पढ़ी, बहुत अच्छी लगी, “बहुत अद्भुत पदार्थ इसमें रहे हुए है”, वह अंदाज आया, इसलिए इस पर पुस्तक लिखने का विचार किया। अषाढ़ सुद बीज शिविष्यनक्षत्र में सुबह इस पुस्तक को लिखने का प्रारंभ किया। थोड़ा लिखने के बाद ही याद आया कि “आज तो ऐसे भी उत्तम दिन है।”

मैंने विस्तार नहीं किया है, सिर्फ भाषा को रसप्रद बनाने का प्रयत्न किया है। उसके बावजूद 39 Page फुलस्टेप के हुए है। कथा लिखकर पूरी हो गई है। अब जिज्ञासा-समाधान लिखना बाकी है, परंतु 40 वे Page पर कथा पूर्ण हुई, उसका 3/4 Page (पौना) आली था, वह व्यर्थ नहीं जाये, इसलिए इस Page पर ही प्रस्तावना लिख रहा हूँ।

जिसे सिर्फ कथा में इस हो, सिर्फ कथा पढ़ना चाहते हो... बीच के Extra विवेचन या वर्णन पढ़ने में इस नहीं हो, उन्हें अनुकूलता रहे... उसके लिये कथा के अक्षर अलग ही कलर में छापने में आये हैं, और बीच का Extra विवेचन अलग कलर में छापने में आया है...

विनंति है कि हमारे अत्यंत हित की इच्छा करनेवाले महापुरुषों के इस विवेचन-वर्णन की उपेक्षा नहीं करके उसके एक-एक अक्षर को भी ध्यान से, शांति से, लचि से पढ़ना, शक्य हो तो यह पुस्तक स्वयं पढ़ो तो भी किसी ज्ञानी संघर्षी के पास भी याठ लूप में - स्वाध्याय लूप में - व्याख्यान लूप में यह पुस्तक जल्द पढ़ना... इस कथा में पदार्थों का महासागर भर दिया है महापुरुषों ने !

कथा पढ़ते-पढ़ते बहुत जिज्ञासाएँ होने की शक्यता है, इसलिए जिज्ञासा-समाधान भी अब लिखना है। मेरी बुद्धि अनुसार जिज्ञासा उत्पन्न

करके मेरे क्षयोपशम के अनुसार उत्तर देने का प्रयत्न कऱुंगा ।

आधा पुस्तक लिख दिया है, उसके बाद यह प्रस्तावना लिख रहा हूं ।
आधा पुस्तक अब लिखुंगा परंतु छपेगी तो एक साथ में एक ही पुस्तक !

युगप्रथानाचार्यसम पूज्यपाद गुणदेव पंव्यास

श्री चन्द्रशेखरविजयजी म. का शिष्य

गुणहंसविजय

तारीख : ११-७-२०२४, गुणवार

सुबह ८-०० बजे अषाढ सुद-पांचम

टी-१९ टावर्स, सिंकंद्राबाद.





राजा रुक्मिणी राजसभामें युवान शीलसन्नाट को
तिर्छी बजर से विकार भाव से देखती हैं..

राजा ऋक्मिणी

ऐसा मत मानना कि “यह हमें पता है ।”

आधार : महानिशीथ ग्रन्थ अध्ययन ७-८

“हे लड़की ! सूर्यश्री ! अंदर इसोई में जा, और वहाँ देख ! राजाने हमें उपहार के रूप में जो रात का भोजन भेजा था, उसमें चावल का एक बर्तन है, वह लेकर आ । इस ग्वालिन को दे देती हूँ, जा जलदी कर...”

गोविंद ब्राह्मण की यत्नी ने घर की गुलाम, घर की नौकरानी सूर्यश्री को आज्ञा की...

“हाँ ! मालकिन ! अभी ही लेकर आती हूँ ।” सूर्यश्री जलदी से अंदर इसोईघर में बर्तन लेने के लिए दौड़ी । भोली, मासुम, नादान थी बिचारी सूर्यश्री ! भगवानने उसके साथ भारी खेल खेला था । भाग्य और दुर्भाग्य दोनों साथ में लेकर आई थी...

रूप उसका अप्सरा जैसा ! इसलिए सौभाग्य !

परंतु उसने जब जन्म लिया, तब ही उसकी माता मर गई थी । पिता जिदा था, परंतु माता बिना की बेटी की क्या हालत होती है ? यह उसका दुर्भाग्य !

अवंति देश के संबुक नाम के छोटे गांव में उसका जन्म हुआ था । उसका पिता था सूर्यशिव ब्राह्मण ! ऐसे तो जाति अच्छी, पढ़ना-पढ़ना यह ही इस जाति का काम ! परंतु वह था नाम का ब्राह्मण ! संस्कार का तो नाम भी नहीं मिले ।

एक तो बिचारा जन्म से ही गरीब !

खानदानी नहीं होने से कोई मर्यादा खाने-पीने की या स्त्री की बाबत में उसके जीवन में नहीं थी । जीवों के प्रति करणा का एक अंश नहीं था ।

भारी कंजुस ! धन होता, तो भी दान नहीं देता... ऐसा विचित्र !

ब्राह्मण होने के बावजूद चंडालों को भी शरमा दे ऐसी क्रूरता ! काट काटी का काम करना हो तो कर सके ऐसे मनवाला !

उसकी शादी किस तरह हुई ? वह तो भगवान जाने, परंतु अंत में यह

सूर्यश्री बेटी हुई । उसके प्रति पिता के रूप में सूर्यशिव को सच्ची प्रीति !

सूर्यश्री का जन्म और पत्नी की मृत्यु... बेटी को बड़ी किस तरह करना ? धनवान नहीं था, कि धन के बल से सूर्यश्री के लिए भी व्यवस्था कर दें ।

अंत में उसने गांव में ऐसी स्त्रियाँ ढूँढ़ ली, जिन्होंने थोड़े दिन पहले ही संतान को जन्म दिया हो, और खुद के संतानों को स्तनपान करवाती हो... सूर्यशिव उन स्त्रियों के पास गया, पैर में गिरा, आजीजी की, खुद की बेटी की हालत का वर्णन किया... उसे भी दूध पीलाने की विनंति की, बदले में काम करने की तैयारी बताई...

छोटी सूर्यश्री के रुदन के सामने स्त्रियों में भगवान जागे, और स्त्रियों ने सूर्यश्री को भी खुद के संतानों के साथ स्तनपान करवाकर जीवनदान दिया...

बहुत खुश हो गया पिता सूर्यशिव !

पत्नी के बाद उसके लिये इन्हें का एकमात्र आधार बन गई थी ये सूर्यश्री !

समय बीतता गया । सूर्यश्री ने यौवन को प्राप्त किया, रूप सोलह कलाओं से खिल उठा... पिता को था कि “धन चाहे नहीं है, परंतु यह प्यारी-सुंदर बेटी बड़ा धन है । कोई भी धनवान इसके साथ शादी करने को तैयार हो जायेगा, मेरी बेटी सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करेगी । मैंने तो सुख देखा नहीं है, परंतु मेरी बेटी तो सुख प्राप्त करेगी ।”

परंतु योचा हुआ तो किसी का नहीं होता, कुदरत के सामने, नियति के सामने किसी की नहीं चलती । पिता के अरमानों को जला देने में समर्थ ऐसे भारी दृष्टकाल ने अवंती देश पर धावा बोला । पानी की एक बूँद भी आकाश में से जमीन पर नहीं गिरी । चातुर्मास के चार महीने भी आकाश में से तिर्फ अंगारो की बारीश हुई । जबरदस्त गर्मी बरसने लगी । पानी के बिना अनाज कहाँ से ? लोग प्यासे-भूखे दिन-महीने पसार करने लगे । पुराने साल के संग्रह किए हुए अनाज-पानी के सहारे खिंच-खिंचकर एक साल व्यतीत कर दिया । “आनेवाले चातुर्मास में बारीश होगी ।” इस एक आशा से भी जीये...

दूसरा चातुर्मास भी आया, जबरदस्त बरसात हुई, परंतु पानी की नहीं, अद्वितीय की धगधगती किरणों की । जमीन पर शेटी सेक सके, ऐसी

धगधगती जमीन दोपहर के समय हो जाती... लोगों की बरसात की आशा तो मर चूकी थी, परंतु जीने की आशा तो अमर ही रही... ! हाँ ! लोगों का जीवन जहाँ दुर्लभ था, वहाँ पथुओं की तो क्या बात करना ? हजारों की संख्या में पथु मरने लगे ।

लोगों को तो जीने की आशा ने ही जिंदा रखा... ऐसा कहे तो चलेगा । यूं के यूं तीन, चार, पांच... साल बीत गये ।

आयुष्य जिसका बलवान था वे जिंदा रहे...

पानी-अनाज जिन्होंने बड़े प्रमाण में भटकर रखे थे, वे जिंदा रहे...

धनवानों ने जिन पर करणा बरसाई, वे जिंदा रहे...

बाकी हालत ऐसी हुई कि माता पुत्र के वात्सल्यभरे संबंधों का नाश हुआ । माता-पुत्र को भूखा-प्यासा रखकर खाने-यीने लगी, तो समर्थ पुत्र माता को मौत के मार्ग पर धकेलकर खुद का पेट भरने लगा । छोटे बालक और वृद्ध माताएँ यमराज के दरवाजे पर पहुँचने लगे । छोटे बालकों का माता के सामने नहीं चलता, और वृद्ध माताओं का युवान पुत्र के सामने नहीं चलता, और अंत में भूख-प्यास के कारण से उन्हें भयानक वेदना अहन करनी पड़ी ।

लोगों में चोरी-लूटफाट-मारामारी बड़े प्रमाण में बढ़ गई । सज्जन भी दुर्जन बन गये, तो दुर्जनों की तो क्या बात करना ?

ऐसी हालत में बिचारा शूर्यशिव क्या करे ? वह तो ऐसे भी गरीब ही था । उसे तो खुद का अमूल्य धन बेटी भी भार लय हो गई ।

और एक भयानक दिन शूर्यशिव को घातकी विचार आया ।

वह बहुत दिनों से भूखा था, पच्चक्खाण के बिना ही मानो कि मासक्षमण हो गया । और भूख की पीड़ा से वह विचारों में चला गया, “पेट भरने के लिए मुझे क्या करना ? एक उपाय है । इस बेटी को काट दूँ, तो उसका मांस खाने मिलेगा ।”

“नहीं...नहीं ! बेटी का मांस तो नहीं खा सकते, तो एक काम करता हूँ ? उसे काटकर उसका मांस बेच देता हूँ । उससे जो वैसे मिलेंगे, उससे दुकान में से कुछ खाने को मिलेगा । बाकी अब अगर कुछ नहीं खाऊंगा, तो मैं मर ही जाऊंगा, और मेरे मरने के बाद मेरी बेटी भी कहाँ से जिंदा रहेगी ? मैं नहीं मारूंगा, तो भी वह मर ही जाएगी...”

शास्त्रों का वचन है “**छुहासमा देयणा नत्यि ।**” भूख जैसी कोई पीड़ा नहीं है । कवि ने कहा है “**भूख्याजनोनो जठराश्चि जागशे, खडेणी भस्मकण नवि लाधशे ।**” भूखे लोगों के पेट की आग जब भड़केगी, तब वे महलों को तोड़-फोड़कर खंडहर बना देंगे और वे खंडहर भी ऐसी राख बनेंगे कि हवा में सब राख उड़ जाने के बाद एक कण भी राख नहीं मिलेगी ।”

भूखे रहनेवालों को पता चलता है कि “**भूख की पीड़ा क्या होती है ?**”

सूर्यशिव भी ऐसी ही पीड़ा का भोग बना । रौद्रध्यान के संस्कार आज पशुओं की जगह खुद की प्यारी बेटी की तरफ ही मुड़े । ये है संसार ! भयानक स्वार्थी !

परंतु उसका और बेटी का थोड़ा पुण्य (पापानुबंधी ?) जागृत था, कि तुरंत ही उसका विचार बदल गया, “नहीं नहीं ! प्यारी-दुलारी मेरी बेटी की मेरे हाथ से हत्या बिल्कुल उचित नहीं है, उसके बदले में उसे किसी धनवान के वहाँ बेच दूँ । यह सुंदर तो है ही, वह धनवान उसे पत्नी, गुलाम, नौकरानी जो बनाये वह... परंतु वह जिंदा तो रहेगी । और मैं धन लेकर इस अवंति देश को ही छोड़ दूँगा । मैं अपने-आप को सभाल लूँगा, परंतु इसे साथ में ले-लेकर घुमना और दोनों का पेट भरना यह तो शक्य ही नहीं है ।”

अंत में पिता ने पुत्री को बेच देने का निर्णय कर लिया । वह पत्नी, वेश्या, गुलाम, नौकरानी जो बने, उसकी तैयारी के साथ !

परंतु भाग्य योग से उसे गोविंद नाम का ब्राह्मण मिल गया । वह चौदह विद्याओं का पाठ्यामी था, अत्यंत क्रद्धिसंपन्न था, और गोविंद ने धन देकर उग रहे योवन के राह पर खड़ी सुंदर सूर्यश्री को खरीद ली । गोविंद शादीशुदा था, परंतु बड़े लोगों की बात बड़ी होती है । उनके घर की पत्नियाँ भी समझती हैं कि “पुलुषों की इच्छा बहुत होती है, हमें चूप रहना । वह हमें सुख देता है ना ।

बस ! वह ही बहुत !”

किर भी समग्रतया वहाँ सूर्यश्री खुश थी ।

लोगों को पता चला कि “**सूर्यशिव ने खुद की बेटी को बेचा है, पैसे लिये है ।**” इसलिए लोग एकदम क्रोधित हो गये । बेटी की शादी करना अलग बात ! और बेटी के पैसे लेना यह तो महापाप है ! बेटी कमाकर भी धन लाये,

तो भी माता-पिता उसे हाथ भी नहीं लगाते । अगर बेटी पराई है, तो उसका धन भी पराया ही होता है ! तो किर बेटी को बेचकर धन लेना यह तो आर्य देश के लोग किस तरह सहन करें ?

समाज ने सूर्यशिव को बहुत धिक्कारा । ऐसे भी उसका मन उस स्थान से उठ गया ही था । वह अवंति देश छोड़कर अन्यस्थान में चला गया । परंतु एक छोटे कुसंस्कार ने उसके जीवन में यारों की हारमाला का थर्जन कर दिया । उसे लगा कि “यह ही धंधा शुल कर दूँ, लड़की को गुप्त तरीके से उठा लेना और दूसरों को बेच देना... ऐसी लड़कियों को खरीदनेवाले मिल ही जाते हैं । इस व्यापार में जबरदस्त कमाई होगी ।”

और मजबुरी से खुद की बेटी को बेचने के बाद अब मजबुरी के बिना सिर्फ पैसे कमा लेने की धून में सूर्यशिव ने निर्दोष लड़कियों को फंसाने का, अपहरण करने का, बेच देने का धंधा चालु कर दिया । वे बिचारी लड़कियाँ वेश्या बन गईं, बलात्कार का भोग बन गईं, अत्याचारों का भोग बनी... परंतु सूर्यशिव को तो सिर्फ धन के साथ मतलब था ।

आज भी भारतदेश में और विश्वभर में हजारो-लाखो लड़कियों को फंसाकर बेच देने का घोर पाप हजारो-लाखों लोग कर रहे हैं । और उन पर क्या गुजरता है ? वह तो जानकारों को पूछो, तो ही पता चलेगा । एक बहन ने आंखों से देखी बात ! युटेप में एक होटल में उन्होंने शत को प्रवेश किया, और कम से कम १०० लड़कियों को उन्होंने संपूर्ण नश्व हालत में देखा । कोई दरवाजे के पास सभी का सत्कार कर रही थी, कोई शराब आदि परोस रही थी, कोई नाच रही थी... वह बहन त्रस्त हो गए, भाग गये । उसके बाद गहराई में उतरने पर उन्हें बहुत कुछ पता चला, जो यहाँ लिखना अशक्य तो नहीं है, किर भी जाने दो ।

In Short : पहले जिनका भोग कर लिया हो, उसके बदले नई लड़कियों की किंमत ज्यादा मिलती है, इसलिए उन वेश्यागामी पापी कस्टमरों के सामने उन लड़कियों को एकदम नई साबित करने के लिये बारबार उनके गुसांग के ओपरेशन करने में आते हैं । जिससे पूर्वभुक्त ऐसी भी वह लड़की एकदम अभुक्त ही लगती है । एक-एक लड़की पर ऐसे कितने ओपरेशन होते हैं ? और उसका कितना दर्द होता है ? और विलासी लोग उन पर कितना अत्याचार गुजारते हैं ? वह तो भगवान ही जाने ।

शूर्यशिव ऐसे ही घोरतिघोर पाप कर रहा था, और उसके द्वारा उसने बहुत धन कमाया ।

दुष्काल तो एक तरफ चालु ही था । कुल १२ साल तो दुष्काल था । उसमें जब ८ साल बीत गये, तब गोविंद ब्राह्मण की समृद्धि भी खत्म होने को आई । धन का ढेर खाली हुआ, और तलिया दिखने लगा ।

गोविंद बिचारा चिंता करने लगा “अब मेरा पूरा परिवार खत्म हो जायेगा । व्यार-दुलार से पालन किये हुए इस परिवार को मेरी नजर के सामने तड़प-तड़पकर मरते हुए मैं किस तरह देख सकुंगा ? अभी तो दुष्काल ज्यादा चलने की संभावना है । अब मेरी शक्ति की सीमा आने लगी है । अभी तक चल गया, और चल रहा है, परंतु अब लंबे समय तक कितना चलेगा वह मुझे पता नहीं चल रहा... क्या करँगा अभी ?”

भविष्य की चिंता में गोविंद बैठा था ! और उस ही समय उनके घर में दूध-दहीं-घी देने को आती ग्वालिन आ चढ़ी, उसने घी-शक्कर मिक्स करके छोटे-छोटे लड्डू बनाये थे “लो मालकिन ! बच्चों के लिए लेने हैं ये लड्डू...”

गोविंद की पत्नी ब्राह्मणी ने कहा, “मेरे पास राजा के वहाँ से भेट के रूप में आये हुए चावल है, एक बर्तन भरकर है । उसके बदले मैं ये खरीद सकती हूं... बोल तुझे चलेगा ?”

ग्वालिन को भी अनाज की जल्हत थी ही, उसने हाँ कहा । उसने छोटे छोटे लड्डू गोविंद की पत्नी को दिये, उसके बहुत बच्चे थे । भूखे बच्चे नजर लगाकर ही बैठे थे । बिल्ली दूध पर झापट मारे, चूहे पर झापट मारे... इस तरह इन लड्डूओं पर बालकों ने जोरदार झापट लगाई, गोविंद की पत्नी कुछ बोले, सोचे उसके पहले तो बच्चों ने सभी लड्डू खत्म कर दिये ।

गोविंद की पत्नी देखती ही रह गई । हालाँकि बच्चों को खाने के लिए लड्डू देने ही थे, परंतु इस तरह एक झटके में सब पूरे हो जाये... यह उसके लिए अभी की परिस्थिति के अनुसार असह्य था । उसे बहुत अजीब लगा, परंतु माता थी ना, और बालकों का अज्ञान + भूल दोनों का उसे तो ज्ञान था ही । वह चूप ही रही... परंतु सोचने लगी, “आगे क्या होगा ? दुष्काल को आठ साल हो गये है, अब अगर और चार साल दुष्काल चलने की बात सच हो जाये, तो तो.... ?” उस तरफ गोविंद जिस विचार में था, उस ही विचार में गोविंद की पत्नी चली

गई ।

“मालकिन ! मुझे देरी हो रही है, जल्दी चावल का बर्तन दो । मुझे गोकुल पहुँचना है...” ग्वालिन ने उसे विचार में से बाहर निकाला...

गोविंद पत्नीने - मालकिन ने घर की नौकरानी, गुलाम बनी हुई लड़की सूर्यश्री को आदेश किया, “जा, जल्दी इसोईघर में... जा और चावल का बर्तन लेकर आ... जल्दी कर ।”

सूर्यश्री इसोईघर में गई, सब देख लिया, दो-तीन बार देखा... परंतु चावल का बर्तन नहीं मिला । “मालकिन ! अंदर तो चावल का बर्तन कहीं भी नहीं है... आपने कहाँ रखा है ?”

“अरे, बराबर देख, ऊपर सीके-टोकरी में रख दिया होगा... इसोई में ही रखा था, वह कहाँ जाएगा ? बराबर देख... जल्दी करना, इस ग्वालिन को देरी हो रही है...”

सूर्यश्रीने वापस बराबर देखा, परंतु चावल का बर्तन नहीं मिला... नहीं ही मिला । “मालकिन ! कहीं नहीं है ।” सूर्यश्री थोड़ी घबराकर बोली ।

गोविंद की पत्नी देख रही थी कि “ग्वालिन को देरी हो रही थी ।” वह खुद ही खड़ी हुई । “ग्वालिन ! एक-दो क्षण इंतजार कर, मैं खुद ही देखकर आती हूँ ।” और वह ही अंदर ढूँढ़ने के लिए गई । बहुत तलाश की, परंतु चावल का बर्तन नहीं मिला ।

गोविंद की पत्नी इसोईघर से बाहर निकलकर अंदर के कमरे में देखने लगी । अचानक उसकी नजर घर के एकांत स्थान में गई, और वहां का दृश्य देखकर गोविंदपत्नी स्तब्ध हो गई ।

उसने वहाँ क्या देखा ?

उसका युवान सबसे बड़ा बेटा उस एकांत में - हल्के (धुँधले) अंधेरे में वेश्या के साथ बैठा था । उसके हाथ में चावल का बर्तन था, और दोनों चावल खा रहे थे...

हमें अभी लगता है कि “चावल तो एकदम तुच्छ वस्तु है, उसके लिये यह सब क्या माथापच्ची ?” परंतु हमने दुष्काल देखा नहीं है, गरीबी देखी नहीं है, भूख क्या होती है ? वह देखा नहीं है । और उस जमाने में तो ऐसे भयानक दुष्काल के समय में चावल के एक-एक ढाने की किमत थी और हमने सुना भी

है कि “वज्रस्वामी के समय में एक परिवार ने आत्महत्या करने के लिये अंत में एक लाख सोनामोहर देकर थोड़ा अनाज खरीदा था,” यानि उस समय चावल की किमत थोड़ी भी कम नहीं थी।

गोविंद पत्नी को आघात लगा। दो बात का (१) “लड़का वेश्यागामी बना है।” उसका... (२) बेटा खुद के माता-पिता-भाई-बहन को भूलकर पराई इत्री को, वेश्या को चावल खिला रहा है... उसे परिवार के लिये बिल्कुल स्नेह नहीं है...

गोविंदपत्नी गुस्से में चावल का बर्तन बापस लेने के लिये उसकी ओर मुड़ी, फटाफट चलने लगी...

उसे अंदाज नहीं था। वह चल नहीं रही थी, उसका छेठ दुर्भाग्य, उसका अतिविशट सौभाग्य ही उसे उस ओर धकेल रहा था। बस, अल्पक्षणों में ही उसके जीवन में आक्रियिक परिवर्तन आनेवाला था।

उसके कदमों की आवाज बड़े बेटे के कान में पड़ी, वह झाबक गया, मुँह मोड़कर देखा तो सग्गी माता को खुद की तरफ आते हुए देखा। वह समझ गया कि “मैंने चावल की चोरी की है, और वेश्या को खिला रहा हूँ... मैं भी खा रहा हूँ, इस मेरी गंभीर भूल के लिये माता मुझे सजा करेगी। अरे! यह तो ठीक! परंतु ये चावल छीन लेगी, मुझे खाने नहीं देगी... परंतु मुझे खाना ही है। मैं उन सभी का विचार करने बैठुंगा, तो भूखा मरुंगा... नहीं, नहीं! मेरी माता मेरे पास से चावल छीन ले, तो यह नहीं ही चलेगा, मैं नहीं चलने दूँगा... अगर वह यहाँ आएगी, तो मैं उसे मार दूँगा...”

भूख की आग और वासना की आग... ये दोनों ऐसी भड़की कि सग्गी माता को मार देने तक का विचार कर बैठा और जीव को कैसे-कैसे कषाय जागृत होते हैं, उसका अनुभव तो दुनिया करती ही है। अभी ही एक Case सुना कि एक लड़की ने पुलिस स्टेशन में जाकर शिकायत की कि “मेरे पापा मेरे साथ गंदी हरकते करते हैं। पापा को मम्मी से संतोष नहीं है, उनकी नजार मेरे पर बिगड़ी है।” पुलिस ने पापा को जेल में डाला। सालों तक कोर्ट में केस चला, अंत में पापा निर्दोष जाहिर हुए। सच्ची बात बाहर आई कि बेटी किसी खराब लड़के के लव में थी, पापा ने मना किया, बेटी को गुस्सा आया, उसका बदला

लेने के लिये पापा पर गंदा आशेष रख दिया ।

“मा ! थड़ी रहो” बड़े बेटे ने इतने जोर से चिल्लाया कि माता चौक गई । “एक कदम भी आगे मत आना, चली जा... देख यहाँ आई है, तो तुझे मार डालूंगा, फिर कहना मत कि मैंने तुझे सावधान नहीं किया था ।”

गोविंदपत्नी, उस बड़े बेटे की सग्नी माता को आघात लगा, “यह क्या ? मेरा बेटा मुझे मार डालने की धमकी दे रहा है ? सिर्फ चावल के लिए ? उस वेश्या के लिए ? उसे मेरे लिए कुछ भी लगाव नहीं है ?” यह आघात मन पर, हृदय पर इतना जोर का लगा कि वह वहाँ ही जमीन पर गिर गई । बेहोश हो गई, होश ओ बैठी...

“अरे लड़की ! तेरी सेठानी को बोल.. क्यों इतनी ढेरी कर रही है ? अरे, चावल नहीं मिल रहे, तो मूँग का भरा हुआ बर्तन दे दें... मुझे चलेगा, परंतु जल्दी कर...” वह ग्वालिन अधीर बन गई थी । अंदर जो घटना घटी थी वह तो किसी को झ्याल ही नहीं थी । बस बेटे व वेश्या को पता था कि “माता बेहोश होकर जमीन पर गिर गई है ।” और घबराकर वे दोनों वहाँ से जल्दी भाग गये, हा ! चावल का बर्तन लेकर ही...

सूर्यश्री अंदर गई और उसने गोविंदपत्नी को धरती पर बेहोशी की हालत में देखा । वह घबरा गई, वह जोर-जोर से चीखने लगी ।

गोविंद ने चीख सुनी, वह तुरंत अंदर गया, उसके बाकी के स्वजन भी अंदर भागे, वह ग्वालिन भी अंदर भागी... सभी ने दृश्य देखा । परंतु यह पता नहीं चला कि “यह कैसे हुआ ?”

गोविंद ने पानी छिड़का । दूसरे लोग हवा डालने लगे... और थोड़ी देर में गोविंदपत्नी होश में आई... बैठी... धीरे-धीरे आंखे खोली... आस-पास सभी को देखा... और उसे सबकुछ याद आ गया... हाँ ! बेहोश होने के पहले का प्रसंग तो याद आया ही, परंतु उसके अलावा भी बहुत कुछ याद आ गया । उसे जातिस्मरण ज्ञान हो चुका था ।

गोविंदपत्नीने पूर्वभव के ज्ञान के अनुसार पति-पुत्र आदि सभी को हितोपदेश दिया, वह हितोपदेश *Short* में इस प्रकार था ।

(१) “मरा हुआ सर्व हमें डंख मारेगा सही ? नहीं । पानी बिना के सरोवर में डुबकी लगा सकते हैं सही ? नहीं । मोटी रस्सी ही नहीं हो, फिर भी

बंधन के द्वारा हम किसी को बांध सकते हैं ? नहीं ! यह सब अशक्य है, भ्रम है... मिथ्या है...

वैसे “यह मेरा पुत्र है, यह मेरी बेटी है, यह पौत्र है, यह पुत्रवधू है, यह जमाई है, यह माता है, ये पिता है, यह इष्ट है, यह मधुर है, यह प्रिय है, यह मनोहर है, यह मित्र है, यह स्वजन है, यह बंधुवर्ग है।” ऐसे विचार मत करो। यह सब मिथ्या है, यह सब भ्रम है...

“परंतु तुझे अचानक ही ऐसा सब बोलने का क्यों सूझ रहा है ?”” गोविंद व्याकुल हो गया... पत्नी बोली, “मैंने प्रत्यक्ष ही देख लिया कि “यह सब गलत है।” “हमारे स्वजन हमें सहायक बनेंगे।” यह आशा भी गलत है। कोई भी हो, वह अगर हमें सहायता करता है, हमें साथ देता है, तो उसमें उसका कुछ ना कुछ स्वार्थ ही है।

स्वार्थ है, तब तक ही माता माता का शोल अदा करती है...

स्वार्थ है, तब तक ही पिता पिता का कर्तव्य निभाता है...

बेटी या जमाई, पौत्र या पुत्रवधू या कोई भी... भाई-मित्र-स्वजन... सभी ही ! उनका छोटा -बड़ा कुछ स्वार्थ है, तब तक वे साथ में हैं। जब उनका स्वार्थ अपने पास से खत्म हो जाता है, तब उनका स्वरूप बदल जाता है।”

“अरे, परंतु तुझे किसने धोखा दिया है ? वह तो बता।” गोविंद ने पूछा।

पत्नी बोली... “मेरे बड़े बेटे ने ही मुझे धोखा दिया है। उसे प्राप्त करने के लिये मैंने कितनी मन्त्रों मानी थी, उसके बाद वह गर्भ में आया। उसे प्राप्त करने लिए मैं कितनी तड़पी थी, उसके गर्भ में आने के बाद उसके जन्म के लिए कितनी उत्सुक थी, नौ महीने उसका भार पेट में खुशी-खुशी उठाया, उसके जन्म के बाद उसे राजकुमार की तरह संभाला, सबसे पहला बेटा था, इसलिये अत्यंत प्यारा था, उसके लिये मैंने जो भोग दिया है, उसका वर्णन करने के लिये मेरे पास शब्द नहीं है। अब ऐसी आशाओं में जिंदा थी कि “अब यह बेटा सब कुछ संभाल लेगा। मेरी सभी इच्छाएँ तो पूरी हो ही गई हैं, बस अब तो मेरे स्वजनों को खुश रखूँगी, सभी की इच्छाएँ पूरी करूँगी और प्रसन्नता के साथ यह जीवन व्यतीत करूँगी...”

जिस बड़े बेटे के भरोसे मैंने ऐसे अरमान रखे थे, उस बड़े बेटे ने एक

झाटके में ही सभी इनेह संबंधों को काटकर मुझे कह दिया कि “मा ! आगे मत आना, नहीं तो तुझे मार ढूँगा । फिर कहना मत कि मैंने तुझे चेतावनी नहीं दी थी...”

चौक उठागोविंद !

“बड़े ने तुझे खून की धमकी दी ?”

“हाँ ! खून की धमकी ! मजाक में नहीं, गुस्से के साथ, खुन्नस के साथ !”

“परंतु किसलिए ?”

“चावल और उस वेश्या के लिए... बस !”

“गोविंद ! उसकी भी क्या गलती ? स्वार्थ की ही सगाई थी । अब मुझे आप पर भी लेश भी राग नहीं है, ये मेरे शेष बेटों से भी राग मर गया है । अरे, आज मेरे घर में जैसा बेटा है, वैसा ही घर-घर है । फर्क इतना है कि उन बेटों के स्वार्थ को अभी तक चोट लगी नहीं है, इसलिये वे माता-पिता को चाहते हैं । जिस दिन उनके स्वार्थ को चोट लगेगी, उस दिन वे भी माता-पिता के दुश्मन बन जायेंगे...

(लड़के-लड़कियाँ युवान बनते हैं, उनकी इच्छाएँ भी बड़ी होती हैं । उस समय माता-पिता उनकी इच्छाओं की पूर्ति नहीं करते, तब वे भागकर शादी करते हैं, माता-पिता पर गलत आरोप लगाते हैं, माता-पिता को गाली बोलते हैं, माता-पिता को खुद की जिंदगी बिगाड़नेवाले कद्दर दुश्मन मानते हैं... पैसों के लिए माता-पिता का खून कटनेवाले भी है ही ना... स्वार्थ पूरा होने के बाद वृद्धाश्रम में माता-पिता को रखड़ते रखनेवाले भी है ही ना...)

गोविंद ! बेटे ! स्वजन ! याद रखना, हमारे खुद के कहे जाते हरेक लोग एक घड़ी, दो घड़ी या थोड़े समय तक ही आपके साथ संबंधों को संभालेंगे । जब तक उनका स्वार्थ होगा तब तक ।

ये सभी स्वजन कृत्रिम है, उनका राग अनंतसंसार बढ़ एगा । एक ही वस्तु अपने लिये हितकारी है - धर्म ! रात-दिन लगातार विशुद्धभाव के साथ धर्म का ही सेवन हम सभी को करना चाहिए ।”

सभी शांत चित्त से गोविंदपत्नी की बात सुन रहे थे... उन्हें लगा कि “मानो आज गोविंदपत्नी में किसी देवी ने प्रवेश किया है ।” जातिस्मरण को

तो वे जानते ही नहीं थे ना !

गोविंद एक शिष्य की तरह पत्नी को पूछता है “तू धर्म का सेवन करने को कहती है, वह धर्म कैसा है ? तू बताएँगी ?”

संविघ्नगीतार्थ आचार्य जिस तरह उपदेश देते हैं, उस तरह ही वह गोविंदपत्नी अलौकिक उपदेश देती है।

“धर्म कैसा है ? - (१) मधुर है (२) प्रिय है (३) मनोहर है (४) सच्चा मित्र है (५) सच्चा स्वजन है (६) सच्चा बंधुवर्ग है (७) धर्म हर्षकारक है (८) पुष्टिकारक है (९) बलकारक है (१०) उत्साहकारक है (११) निर्मल-यश-कीर्ति का साधक है। (१२) महिमा का उत्पादक है। (१३) अच्छी तरह से सुखपरंपरा का दायक है।

ये धर्म ही

(१) सेवन करने योग्य है। (२) आशाधने योग्य है। (३) पोषण करने योग्य है। (४) पालन करने जैसा है। (५) करणीय है। (६) आचरने जैसा है। (७) अनुष्ठेय है। (८) उपदेशने योग्य है। (९) कहने योग्य है। (१०) पढ़ने योग्य है। (११) प्रज्ञापने योग्य है। (१२) करने योग्य है।

ये धर्म ही

(१) ध्रुव है, (२) शाश्वत है, (३) अक्षय है, (४) अव्यय है, (५) सकलसुख का भंडार है, (६) अलज्जनीय है, (७) अतुलबल-वीर्य-ऐश्वर्य-सत्त्व-पशक्रम से संयुक्त है, (८) श्रेष्ठ है, (९) उत्तम है, (१०) सभी दुःख-दारिद्र्य-संताप-उद्वेग-अपयश-अभ्याख्यान-जन्म-जरा-मरण आदि सभी भयों का नाशक है, (११) अनुपम है, (१२) सहाय है, (१३) तीन लोक में एकमात्र पूजनीय है।

(यह पढ़ते समय कंटाला भी आयेगा, शीपीटेशन भी लगेगा, अर्थ पता नहीं भी चले, किर भी इतना जल्ल सोचना कि उस ब्राह्मणी को जातिस्मरण के द्वारा धर्म की कैसी अपरंपार महिमा समझ में आई होगी कि गंगानदी के धसमसते बह जाते पानी की तरह उसकी वाणी भी बहने लगी... वह कोई जैन नहीं थी, अभी तक उस बिचारीने जैन शब्द सुना भी नहीं था, तो अचानक ये वाणी कैसे फुट निकली ? पूर्वभव में वह कौन थी ? क्या रहस्य है ?...)

मुझे धर्म ही करना है, तो अब,

स्वजन, मित्र, बंधु का मुझे कुछ काम नहीं है। धन-धान्य, सोना, चांदी, रत्न आदि का भंडार इकट्ठा करने की मुझे कोई जलरत नहीं है...

यह यभी धनसमृद्धि तो इन्द्रधनुष्य के जैसी चंचल है, बिजली जैसी चंचल है, स्वप्न जैसी चंचल है, जादु जैसी चंचल है, क्षणभर दिखकर नाश पानेवाली है, अध्रुव है, अशाश्वत है, संसार की वृद्धि करनेवाली है, नरक में फैकनेवाली है, सद्गति के रास्ते में विघ्न करनेवाली है, अनंत दुःख को देनेवाली है।

यह मनुष्यभव आदि जो मिला है, वह धर्म को साधने के लिए है, रत्नत्रयी की आराधना के लिये है। यह सामग्री सुलभ नहीं है। प्रत्येक समय टुकड़े टुकड़े में आयुष्य का नाश चालु ही है।

जैसे वज्र का घात (प्रहार) होता है और मिट्टी के बर्तन के टुकड़े-टुकड़े हो जाते हैं, वैसे जब इस देह पर बुद्धये का प्रहार (घात) होगा, तब यह शरीर एकदम निर्थक हो जायेगा।

घास के अग्र भाग पर इही हुई पानी की एक बूँद जिस तरह विनाश पाती है, वैसे ही यह जीवन भी आंख के एक पलकारे में नाश पायेगा...

जिन जीवों ने परलोक के लिये पाथेय (भाथा) प्राप्त नहीं किया हो, उनका तो मानवभव निष्फल ही जायेगा।

गोविंद ! इसलिये ही मेरी बात सुनना...

छोटे से छोटा प्रमाद भी बिल्कुल उचित नहीं है।

क्योंकि, (१) इस मानवभव में शत्रुओं में और मित्रों में हमेशा समान भाव रखना होता है।

(२) अप्रमाद के द्वारा पांच महाब्रतों को धारण करना होता है।

(३) हिंसा-असत्य-चोरी-अब्रह्म-परिग्रह इन पांच का त्याग करना होता है।

(४) दांत साफ करने का एक तिनका भी किसी को पूछे बिना, किसी के देने के अलावा लेना नहीं होता है।

(५) परमपवित्र ऐसे दृढ़र ब्रह्मचर्य को धारण करना होता है। उसकी नववाड़ की भी लेश भी छंडना (भंग) या विशाधना करनी नहीं होती। मन से,

वचन से या काया से भी नहीं...

- (६) वस्त्र, पात्र आदि संयमोपकरणों में भी ममता करनी नहीं होती...
- (७) अशन-पान आदि तमाम का शत्रिभोजन का त्याग करना होता है ।
- (८) ४२ दोष बिना की गोचरी लानी होती है ।
- (९) मांडली के पांच दोष के बिना वापरना होता है ।
- (१०) उचितकाल में और परिमित वापरना होता है ।
- (११) पांचसमिति का शुद्ध पालन करना होता है ।
- (१२) तीनगुसि का शुद्ध पालन करना होता है ।
- (१३) महाव्रतसंबंधी २५ भावनाओं का विचार करना होता है ।
- (१४) अनशन आदि बारह प्रकार का तप करना होता है ।
- (१५) साधु की १२ प्रतिमाओं की आराधना करनी होती है ।
- (१६) द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव ये चार प्रकार के अभिग्रह लेने होते हैं...
- (१७) जमीन पर संथारा करके सोना होता है ।
- (१८) केश का लोच करना होता है ।
- (१९) शरीर का परिकर्म = सजावट, टापटुप बिल्कुल नहीं करनी होती है...
- (२०) सर्वकाल गुरु की आङ्गा का पालन करना होता है...
- (२१) भूख आदि २२ परिषह सहन करने होते हैं...
- (२२) देव, मनुष्य-तिर्यच संबंधी उपसर्ग पर विजय प्राप्त करना होता है ।
- (२३) गोचरी में मिले, नहीं मिले, अल्प मिले उससे जीवन का निर्वाह करना होता है...
- (२४) महापुरुषों ने जिसका भार वहन किया है, जो भार वहन करना अत्यंत कठिन है, ऐसे १८००० शीलांगो का भार बिल्कुल आशम लिये बिना वहन करना होता है ।
- (२५) दो हाथ के द्वारा समुद्र को तैरने जैसा कठिन कर्तव्य है यह !
- (२६) जिसमें कोई स्वाद ही नहीं है, ऐसा ऐती का कवल बिल्कुल छेद के बिना खाने जैसा कर्तव्य है यह !
- (२७) अत्यंत सुतीक्ष्ण ऐसी तलवार की धार पर चलने जैसा कर्तव्य है

यह !

(२८) धगधगती जलती अग्नि की ज्वालाओं को यीने जैसा कर्तव्य है यह !

(२९) धसमसते गंगा नदी के प्रवाह से उल्टे प्रवाह में तैरने जैसा कर्तव्य है यह !

(३०) मेघवर्त का वजन अपने साहस रूपी तराजू के द्वारा मापने जैसा कर्तव्य है यह !

(३१) विशट चतुरंगी (हाथी-घोड़ा-८थ-पदाति = सैनिक) सेना को अकेले जीत लेने जैसा कर्तव्य है यह !

(३२) परस्पर उल्टे-सीधे घुमते ऐसे आठ चक्रों में से तीर को पसार करना, वह भी नीचे तेल में उसकी पड़ती परछाई को देखकर उसके आधार से तीर को पसार करना और सबसे ऊपर रही हुई और लगातार घुमती ऐसी पुतली की ढाँई आंख को उस तीर के द्वारा बिंधने जैसा कर्तव्य है यह !

(३३) संपूर्ण तीनभुवन पर विजय को सूचित करनेवाली ऐसी निर्मल यश-कीर्ति की जयध्वजा को ग्रहण करने जैसा कर्तव्य है यह !

इसलिए ही गोविंद ! बेटे ! स्वजन !

इस चारित्रधर्म के अनुष्ठान से कठिन दूसरा कुछ भी नहीं है ।

— जगत में भार वहन तो किया जाता है, परंतु वह तो लोग आराम ले लेकर भार वहन करते हैं । यह अतिभारी ऐसा १८००० शील का भार तो पूरी जिंदगी बिल्कुल विश्राम लिये बिना वहन करना है । एक क्षण के लिये भी यह भार नीचे रखना नहीं है । (उखेंगे, तो संयम ही जाएगा...)

— इसलिए प्रेम छोड़ो, घर का सार पुत्र-धनादि छोड़ो, संगरहित बनकर खेद के बिना, प्रसन्नता के साथ सर्वोत्तम धर्म का आचरण करो ।

— धर्म का भयका = दिखावा, गलत प्रशंसा, कपट, मात्र बाह्य व्यवहार नहीं होता । धर्म तो माया-निदान-मिथ्यात्व इन तीन शल्यों के बिना ही करना होता है ।

— जीवों में स्थावर में से त्रस्यणा पाना दुर्लभ है, त्रस्यणे में पंचेन्द्रिय-पण दुर्लभ है । उसमें भी मनुष्यभव और उसमें भी आर्यदेश दुर्लभ है ।

- आर्य देश में खानदान कुल ! कुल में भी उत्तम जाति, उसमें भी लृप की समृद्धि, उसमें भी बल !

- बल में भी जीवन दुर्लभ है । जीवन में विज्ञान दुर्लभ है । विज्ञान में सम्यक्त्वा और उसमें शील की = चारित्र की प्राप्ति दुर्लभ है ।

- शील में क्षायिक भाव और उसमें केवलज्ञान दुर्लभ है । केवलज्ञान मिलने के बाद बुद्धापा + मृत्यु के बिना का मोक्ष प्राप्त होता है ।

- स्थावर - त्रय - पंचेन्द्रिय - मनुष्यभव - आर्य देश - उत्तमकुल

- उत्तमजाति - लृप - बल - आयुष्य - ज्ञान - दर्शन - चारित्र - क्षायिक भाव - केवलज्ञान - मोक्ष... ये सभी वस्तुएँ उत्तरोत्तर महान हैं, और दुर्लभ हैं ।

- जन्म छु बुद्धापा - मरण (मृत्यु) के दुःखो से भरे हुए जीव को इस संसार में सुख नहीं है । इसलिए मोक्ष ही प्राप्त करने जैसा है ।

- लाखो योनियों में अनंतीबार हम घुमे । अब अभी मोक्ष को प्राप्त करने की सामग्री हमने प्राप्त की है ।

- इस भव में अब जो ज्ञान-दर्शन-चारित्र-क्षायिकभाव आदि नहीं पाया, उसके लिए ही शीघ्रता से आप उद्यम = मेहनत करो । ज्ञानी जिसकी निदा करते हैं, ऐसे संसारमत्व को छोड़ दो...

- अनेक लाखो करोड भव पश्चार होने के बाद भी जो जिनवचन सुनने नहीं मिले, वैसे वचनों को सुनकर अगर अब आप सम्यक् तरह से चारित्र का पालन नहीं करो, तो यह सब वापस मिलना अत्यंत कठिन है ।

- इस भव में जो मिला है, उसका आचरण नहीं करें और “मुझे यह सब आनेवाले भव में मिले, क्योंकि मुझे आनेवाले भव में आराधना करनी है,” ऐसा मांगेगे... तो उनको किस मूल्य के द्वारा आनेवाले भव में यह सब सामग्री मिलेगी ? अभी मिली हुई सामग्री के अनुसार धर्म की आराधना करें, तो विशिष्ट पुण्य बांधते हैं, और उस विशिष्ट पुण्य के प्रभाव से वे आनेवाले भव में वापस यह सब सामग्री पाते हैं, परंतु आराधना नहीं करे, तो विशिष्ट पुण्य मिलता नहीं है, तो आनेवाले भवों में वापस यह सभी सामग्री भी नहीं मिलती है...”

गोविंदपत्नी ब्राह्मणीने जैनधर्म का उपदेश दिया, उसमें भी संयमधर्म का विस्तार के साथ वर्णन किया । आपको या किसी को शायद यह सब पढ़ते समय

कंटवला आये, लंबा-लंबा लगे... परंतु वापस ये ही हितोपदेश है कि जिस ब्राह्मणी ने इस भव में “जैन” यह शब्द भी नहीं सुना, उस ब्राह्मणीने इतना सूक्ष्म उपदेश दिया किस तरह ? जातित्मरण में उसे ऐसा तो क्या दिखा ? कौन थी पूर्वभव में यह ब्राह्मणी ?

उसके उपदेश का सार इतना ही है कि

— संसार में कोई आपका खुद का नहीं है । सभी स्वार्थ की नींव पर आपके सगे-प्यारे हैं । स्वार्थ खत्म होगा, और सगे-स्वजन दुश्मन बनेंगे, इसलिए उनका ममत्व छोड़ ही देना ।

— धर्म ही आपका स्वजन है, सर्वस्व है ।

— मनुष्यभव आदि सब सामग्री ऐसी मिली है कि जिससे धर्म प्राप्त कर सकते हैं ।

— इसलिए सब छोड़ दो, चारित्रधर्म की आराधना करो...

किसी तीर्थकर ने देशना दी हो, ऐसी ब्राह्मणी ने देशना दी... उस समय घर के स्वजनों के साथ-साथ नगर के लोग भी बीच-बीच में इकट्ठे हो गये थे । वे सभी अज्ञानी थे, परंतु उनकी भी पूर्व भव की पात्रता होगी कि सभी स्वजन प्रतिबोधित हुए और बहुत सारे नगरवासी भी प्रतिबोधित हुए ।

गोविंद ब्राह्मण अभी बहुत खुश था, क्योंकि उसने सद्गति का मार्ग जान लिया था । उसे लगता था कि “यह मेरी पत्नी तो कल्पवृक्ष, कामधेनु गाय, चिंतामणी रत्न, कामकुंभ से भी अधिक है । मा सरस्वती ही है ।”

बोल उठा गोविंद हर्ष के अतिरेक में...

“इतना काल तो अपना बर्बाद हुआ, धिक्कार हो हमें ! हम कैसे मूढ़ ! अपना अज्ञान ही कितना भारी दुःख है । इस मेरी पत्नी ने अभी जो परम तत्त्व बताया है, वह तत्त्व अभागीयों को तो जानने भी नहीं मिलता । जिनमें सत्त्व की खामी हो, जिन्होंने परलोक के घोर-उग्र नुकसान देखे नहीं हो, जो गलत तत्त्व में कदाग्रही हो, जिनका मन गलत पक्षपात के कारण से धर्मधमता हो, जिनकी बुद्धि राग-द्वेष से मैली बनी हुई हो... ऐसे लोग इस तत्त्व को जान ही नहीं सकते हैं ।

हमने इतने समय तक अपने आप को ही ठगा है, धोखा दिया है ।

कुछ तकलीफ नहीं, जागृत हुए तब से सुबह...

मुझे तो लगता है कि मेरे घर में पत्नी के स्वरूप में परमात्मा ही पधारे हैं।

ज्ञानीओं ने जिन्हें सर्वज्ञ माना है, वे सर्वज्ञ ही आज मेरे घर में उपस्थित हैं। सूर्य जैसे अंधकार का नाश करता है, लोक में प्रकाश करता है, मार्ग बताता है, वैसे यह मेरी पत्नी सर्वज्ञ की तरह अपने अज्ञान-अंधकार का नाश कर रही है, ज्ञान प्रकाश दे रही है, मोक्षमार्ग को बताने के लिए ही यह सर्वज्ञसूर्य मेरे घर उगा है...”

जिंदगी में पहली बार गोविंदने पत्नी की बहुत तारीफ की, रोम-रोम से की, उसकी जबान भी अटक नहीं रही थी। वह भी आज वक्ता बन गया था।

“मेरी पत्नी की वाणी विशिष्ट अर्थों को दर्शनिवाली है। उसके पदार्थ बिल्कुल भी सामान्य नहीं है। ओ मेरे बेटों ! यज्ञदत्त ! विष्णुदत्त ! यज्ञदेव ! विश्वामित्र ! सुमित्र !... आपकी यह माता आज देव और दानवों के लिए भी वंदनीय-पूजनीय बनी है। आपकी माता को मान देने के लिए देव-दानव भी आसन छोड़कर स्वस्थान पर खड़े हो जाते हैं।

और मेरे विद्यार्थी ! पुरंदर आदि... आप भी आपके इस उपाध्याय की पत्नी की वाणी का खास चिंतन करो। तीन जगत् को आनंद देनेवाली है यह वाणी ! सभी के सभी पापों को जला देने के स्वभाववाली है यह वाणी !

आप सभी एक मात्र गुरु को प्रसन्न करने के स्वभाववाले हो और आज ये आपके गुरु सच में प्रसन्न है। परंतु विद्यार्थीओं ! ये वेद पढ़ना, पद्मनाथ करवाना, करना, षट्कर्मों में लीन रहना इन सभी से आत्मा को अल्प बल मिलता है। इन सभी से आत्मा को विशेष फायदा नहीं है।

इसलिए आप जल्दी-जल्दी पांच इन्द्रियों को जीत लो, क्रोधादि चार पापों को छोड़ दो, “विष्णु-मूर्त्र आदि कीचेड़ों से भरा हुआ एकदम गंदा यह देह है।” वह आप जानो।

चलो, हम सभी जंगल में चले जाते हैं...”

गोविंद ब्राह्मण ने वैशाख को उत्पन्न करनेवाले, सुखानुभव करनेवाले अनेक वचन कहे। ऐसे भी वह चौदहविद्या का पारगामी विद्वान था। वचनशक्ति उसके मुख पर खेलती थी।

बहुत लोग इन वचनों को सुनकर जन्म-बुद्ध्या-मौत से अत्यंत डरने लगे, और सभी लोगों के बीच विचारणा शुरू हुई कि “अब हमें धर्म का आचरण तो करना है, परंतु कौनसा धर्म श्रेष्ठ? वह नक्षी करते हैं, और किर उस धर्म की आशाधना करते हैं...”

सीधी बात है कि सभी के अभिप्राय अलग-अलग ही होंगे ।

कोई कहेगा कि “यह धर्म श्रेष्ठ है ।”

दूसरा कहेगा कि “दूसरा धर्म श्रेष्ठ है ।”

अब सभी इस निर्णय को करने की उलझन में फंस गये ।

उस ही समय समझदार बोले – “अऐ ! इस गोविंदपत्नी के अद्भुत वचन हमने अभी ही सुने हैं । उसे नक्षी विशिष्ट ज्ञान हुआ लगता है । तो इसे ही पूछते हैं कि कौनसा धर्म श्रेष्ठ ? और वह जो धर्म बताये, वह ही हमें आचरण करना । अब यह संसार छोड़ना है, वह तो स्नद्धग् है । बस ! धर्म कौनसा करना है, वह ही निर्णय लेना है ।” सभी को यह बात एकदम पसंद आई, सभी एक ही आवाज से बोल उठे कि “बराबर है... बराबर है... यह ब्राह्मणी ही हम सभी को प्रमाण है ।”

गोविंद पत्नी ने बताया “ऐसे तो मैंने आपको अभी ही धर्म बता दिया है, किर भी सुनो, अहिंसा प्रधान ऐसे जो दस प्रकार के श्रमणधर्म है, वह श्रेष्ठ धर्म है ।”

उसने यह सब समझाने के लिए बहुत सारे उदाहरण दिये, बहुत सारी युक्तियाँ दी... और सभी को उसकी बात पर १००% भरोसा भी आया ।

गोविंद के साथ सभी लोगों ने भी हाथ जोड़े उस ब्राह्मणी को ! विनय के साथ बोले “आप हमारे लिये सर्वज्ञ ही हो । बस, हम आपके पीछे, आपके साथ ही इस दशविधश्रमणधर्म का स्वीकार करेंगे...”

जहाँ एक-दो घटे पहले पति-पत्नि के मन में भविष्य के संसार की चिताएँ थी, जहाँ एक-दो घटे पहले बेटे ने माता को खून की धमकी दी थी, वहाँ अभी तो पूरा स्वरूप ही बदल गया ।

बहुत सारे नर-नारीओं ने स्वजन-घर-वैभव का त्याग किया । समझ गये वे कि “यह सब मात्र अल्पकाल के लिये है ।”

उन्हें शाश्वतसुखवाले मोक्ष की तमन्ना जागृत हुई...

उनके मन साधुधर्म के लिए अत्यंत निश्चित हो गये, “दीक्षा लेना या नहीं लेना ?” ये सब चंचलता उनके मन में से निकल गई ।

उन सभी ने ब्राह्मणी के साथ चौदहपूर्वधर, सकलगुणभंडा^२, चरमशरीरी ऐसे गुणधर ऋथविर के पास दीक्षा ली ।

दीक्षा के बाद अल्प भी प्रमाद नहीं किया, घोर तप-संयम-स्वाध्याय-ध्यान-इन सभी में तल्लीन बन गये । वे सभी लोग, गोविंद और गोविंदपत्नी ब्राह्मणी सभी कर्मों का क्षय करके सिद्ध बन गये ।

श्रमाण भगवान् महावीरस्वामी





शील मात्र रुक्मिणी नाम बोलता है और उस वक्त युद्ध के समाचार आते हैं। सभी का भोजन अटक जाता है

श्रमण भगवान महावीरस्वामी ने यह पूरी घटना समवसरण में करोड़ों लोगों को बताई। एक तो प्रभु खुद धर्मदेशनादाता और दूसरा उस देशना का विषय ऐसी शेमांचक, वैशाख्यकारी देशना ! अनेकानेक लोगों को वैशाख्य पैदा हुआ ।

जिज्ञासुओं के गुरु गौतमस्वामी थोड़े प्रश्न पूछते हैं...

गौतमस्वामी : सूर्यश्री को अद्भुत रूप मिला, इसका मतलब यह कि “उसका पुण्योदय तो था ही।” परंतु उसकी माता उसके जन्म के अमय ही क्यों मर गई ? वह जन्म से ही आधी अनाथ क्यों बन गई ?

वीर : गौतम ! सूर्यश्री पूर्वभव में शनी थी, उसका बेटा था । राजा की दूसरी शनी को भी बेटा था... उस अमय सूर्यश्री ने सोचा था कि “अगर यह मेरी सौतन मर जाये, तो उसका बेटा माता के बिना जी नहीं सकेगा, या तो मर जाएगा, या तो कमजोर हो जायेगा... तो मेरा ही बेटा बाद में भविष्य में राजा बनेगा...”

इसतरह एक संतान माता के बिना अनाथ बन जाये, ऐसी मलिन भावना उसने की थी । चाहे उस भव में ऐसा कुछ नहीं हुआ, परंतु उन खराब भावों के कारण से उसने ऐसा कर्म बांधा कि इस भव में वह खुद ही ऐसी लड़की बनी, जिसकी माता मर गई, खुद ही अनाथ बन गई ।

गौतम ! जैसी करनी, वैसी भरनी... जैसा विचार करोगे, वैसा फल मिलेगा !

गौतम : प्रभु ! अम्यवर्दर्शन पाना, वैशाख्य होना, दीक्षा लेना यह सुलभ नहीं है, संसार में वैशाख्य बद्धनेवाले हजारों प्रसंग बनते हैं, फिर भी लोग वैशाख्य कहाँ पाते हैं ? अरे, आपकी देशना भी करोड़ों लोग सुनते हैं, तो भी लोग कहाँ वैशाख्य पाते हैं ? कुछ ही आत्माएँ वैशाख्य पाकर दीक्षा लेती हैं ना !

तो गोविंदपत्नी ब्राह्मणी तो जन्म से ही अजैन ! “जैन” शब्द भी सुना नहीं होगा, कोई धर्मसंस्कार नहीं है... और फिर भी सिर्फ खुद के बेटे के एक वाक्य पर इतने सभी अव्यजीवों का उद्घार कर दें, उन्हें गोक्षसुख प्राप्त करवा दें... अनंत दुःखों से ब्रह्म ऐसे जीवों को परमशांति प्राप्त करवा दें... यह सब कैसे हो सकता है ?

वह ब्राह्मणी ऐसी सुलभ बोधि किस कारण से बनी ?

वह ब्राह्मणी इतने सभी जीवों की उद्धारक किस तरह बनी ?

उस ब्राह्मणी के पास इतना ज्ञान अचानक आया किस तरह ?

उस ब्राह्मणी के पास इतनी वचनशक्ति आई किस तरह ?

वीर : गौतम ! इस ब्राह्मणी ने पूर्वभव में अत्यंत शुद्धभाव के साथ आलोचना की थी, माया-नियाणा-मिथ्यात्व इन सभी शल्यों को निकालकर आलोचना ली थी, उसके बाद गुरु ने दिया हुआ प्रायश्चित्त भी अत्यंत शुद्धभाव से उसने कर लिया था, प्रायश्चित्त पूर्ण करने के बाद समाधिपूर्वक काल (मृत्यु) हुआ था, और वहाँ से पहले सौधर्म देवलोक में इन्द्रमहाराजा की पट्टानी बनी थी, वहाँ से च्यवन होकर यह ब्राह्मणी बनी है ।

ऐसे पूर्वभव में संयम + आलोचना + प्रायश्चित्त + समाधिमरण यह चार किया था, उसके प्रभाव से इस भव में उसे सिर्फ एक ही वाक्य से वैराग्य हुआ, और अंत में मोक्ष हुआ ।

गौतम : प्रभु ! क्या ब्राह्मणी का जीव पूर्वभव में आध्वीजी का था ? और क्या वहाँ उन्होंने ये शुद्ध आलोचना आदि आचरण किए थे ?

वीर : नहीं गौतम ! पूर्वभव में तो ब्राह्मणी का जीव (१) बहुत लब्धिवाला, (२) बहुत सिद्धिओंवाला, (३) बड़ी क्रद्धिवाला, (४) सभी गुणों का आधार, (५) उत्तम शील से संपन्न, (६) महातपत्त्वी, (७) युगप्रधान, (८) श्रमण, (९) अनगार, (१०) गच्छाधिपति का था ।

उसके बाद पहले देवलोक में इन्द्र की पट्टानी और फिर ब्राह्मणी बना । वह पूर्वभव में साध्वी नहीं था ।

गौतम : आशर्य प्रभु ! आशर्य ! स्त्रीयणा तो माया करने से मिलता है । अगर वह गच्छाधिपति था और अगर उस जीव ने खुद के संसार को सिर्फ तीन भव जितना ही अल्प कर दिया था, तो फिर उसने ऐसी तो कौनसी माया की थी, जिसके कारण से वह स्त्री बना था ?

प्रभु : थोड़ी स्त्रियाँ अच्छी होती हैं । बाकी सामान्य से तो ये ही देखने मिलता है कि,

(१) स्त्री सभी पायों का घर होती है ।

(२) ज्ञानी स्त्रीयणे को अच्छा नहीं मानते ।

(३) एकदम स्वादिष्ट लड्डु को सभी खाने की इच्छा करते हैं, वैसे स्त्री

को सभी भोगने की इच्छा रखते हैं । वह ज्यादातर भोग का ही साधन बनी रहती है, अत्कार-सम्मान का नहीं ।

(४) सभी दुःखों का और सभी संकलेशों का घर स्त्री है ।

(५) जो अहिंसा धर्म है, जो सभी सुखों का साधन है, उस परमपवित्र उत्तम धर्म में विघ्न करती है ये स्त्री ! पुरुष उसमें शरीर बनकर संयम लेने से अटकते हैं ना ।

(६) स्वर्ग के दरवाजे बंद करने की जंजीर है स्त्री ।

(७) नरक का द्वार है ये स्त्री ।

(८) सभी अपयश + अपकीर्ति + कलंक + संघर्ष + झगड़ा + दुश्मनी आदि पापों का निधान है ये स्त्री ।

(९) निर्गलकुल को अत्यंत खशब कार्य के द्वारा काला कलंक ढेनेवाली है ये स्त्री ।

ऐसा स्त्रीयणा उस गच्छाधिपति आचार्य जीव ने किस तरह प्राप्त किया ? उन्होंने ऐसी कौनसी भूल की थी ?

वीर : गौतम ! गच्छाधिपति के भव में तो उन्होंने लेश भी माया की ही नहीं थी ।

गच्छाधिपति के भव में यहले

(१) राजा थे और फिर चक्रवर्ती बने ।

(२) धर्मोपदेश सुनकर परलोक भीठ बने, कामभोगों में वैरागी बने ।

(३) चौदह रत्न + नव निधि + ६४ हजार पत्नीयाँ + ३२ हजार सेवक राजा + ९६ करोड़ गांव + भरतक्षेत्र के छँड की मालिकी, इन्द्रमहाराजा के जैसी सभी समृद्धि को उन्होंने धात्र के तिनके की तरह छोड़ दी ।

(४) पुण्यानुबंधी पुण्य से प्रेरित उन्होंने संग त्यागकर दीक्षा ली । और थोड़े काल में ही सभी गुणों के धारक, महातपस्वी श्रुतधर हुए ।

(५) उन्हें योग्य जानकर सुगुरुने उन्हें गच्छाधिपति बनाया ।

(६) गौतम ! सद्गति का मार्ग उन्होंने अच्छी तरह से देख लिया था, इसलिए वे किसी भी दोष के बिना साधुधर्म का पालन करते थे... उग्र अभिग्रह लेते थे, घोर उपसर्गों को और परिषहों को सहन करते थे । शग-द्वेष और कषाय

का त्याग करते थे, आगम के अनुसार विधिपूर्वक गण का पालन करते थे ।

(७) पूरी जिंदगी में कभी भी साध्वी ने लाए हुए गोचरी-पानी-वस्त्रादि को उपयोग में नहीं लिए थे...

(८) बट्काय में से एक भी जीव का आरंभ-समारंभ किया नहीं था ।

(९) मनुष्य-देव या तिर्यच किसी के साथ लेश भी मैथुन के परिणाम से मुक्त थे ।

(१०) अलोक के सुखों की इच्छा या परलोक के सुखों की इच्छा, या ऐसे सुखों के लिए नियाणा या माया आदि सभी कांटों को हमेशा के लिए निकाल दिए थे ।

(११) छास्थता के कारण से जो छोटे-छोटे दोष लगते थे, उसकी भी शल्य के बिना आलोचना, गर्हा, निंदा करते ही थे ।

(१२) उसका जो प्रायश्चित्त आये, वह बशबर वहन करते थे ।

(१३) निद्रा-विकथा आदि सभी प्रमादों का आलंबन उन्होंने छोड़ दिया था ।

(१४) अनेक भवों से इकट्ठ किया हुआ कर्म का ढेर उन्होंने जलाकर थोड़ा ही बाकी रखा था ।

परंतु गौतम !

उन्होंने अव्यभव में जो माया की थी, उसके कारण से उन्हें देवलोक में पट्टरानी का और अंतिमभव में ब्राह्मणी का इस्तरह दो बार स्त्री-अवतार मिला ।

गौतम : उन्होंने कौनसे भव में माया की थी ? कौनसी माया की थी ? जिससे अंतिम दोनों भवों में स्त्री बने ?

वीर : उस महाभाग्यशाली गच्छाधिपति ने उस भव से बशबर एक लाख भव पहले वह माया की थी ।

उस एक लाख भव के पहले के भव में उस गच्छाधिपति का जीव एक राजा की बेटी था । वहाँ उसकी शादी हुई, और उसके बाद तुरंत ही उसका पति मर गया । उसके पिता राजा ने कहा कि “मैं तुझे ५०० अच्छे गांव देता हूं । तू अब तेरी इच्छानुसार अंधों को, विकलांगों को, लंगड़ों को, अनाथों को, शेगीओं को, पीड़ितों को, गरीबों को, सभी लोगों से धिक्कार पाये हुए कोढ़ी आदि को, गरीबी के दुःख और दौर्भाग्य से कलंकित लोगों को, साधुओं को, ब्राह्मणों को,

स्वजन-बंधुओं को तेरी इच्छा के अनुसार दान दे । जिसे जो कुछ भी भोजन-पान-वस्त्र-धन-धान्य-सुवर्ण-चांदी चाहिए, वह सब दे... सभी सुखों को देनेवाली ऐसी जीवदया को पाल...

बेटी ! यह सब तू करेगी, तो आनेवाले भवों में तुझे सुख मिलेगा ।

आज तो तू विधवा है, तू किसी को सुख देनेवाली नहीं है, प्रिय करनेवाली नहीं है, सभी लोग “विधवा” इस तरह तुझे अपमानित भी करते हैं, फूलों की माला + मुँह में पान खाना + इच्छा अनुसार भोग भोगना... यह सब अभी अनिच्छा से भी तुझे छोड़ना पड़ा है, तेरी सभी आशाएँ मर चुकी हैं, तेरा यह जन्म निष्फल गया है... तेरा नाम लेने के लिए भी कोई तैयार नहीं है । उसमें भी वे अमंगल मानते हैं, क्योंकि तू विधवा है ।

बेटी ! आनेवाले भव में तुझे विधवा बनना नहीं है । इसलिए तू मेरे कहे अनुसार धर्म कर । दान देना शुरू कर... ”

राजकुमारी लकिमणी अनुत्ती रही । उसके पिता के वचनों में कड़वी सच्चाई थी, वास्तविका थी, भविष्य की चिंता भी थी, प्रेम भी था, उदारता थी । पितृत्व के साथ मातृत्व भी था ।

रो पड़ी लकिमणी ।

उसने पिता की बात में हाँ तो कही, परंतु आंखों में से टपक-टपक आंसु गिरने लगे, गाल गीले हो गये... गीले शांत स्वर में, आजीजी भरे स्वर में बोली लकिमणी ।

“मेरे प्रिय पिताजी ! मुझे ज्यादा बोलना नहीं आता ।

बस, एक ही विनंति है । आप जल्दी लकड़े मंगाओ, मेरे लिये चिता तैयार करवाओ । मैं खुद को जलाकर मर जाऊंगी ।

पिताजी ! मैं पापी हूँ, तो ही छोटी उम्र में विधवा बनी ना ? तो मुझे अब जीकर क्या काम है ? मुझे जीने से क्या लाभ है ?

उल्टा, अगर मैं जिंदा रहूँगी, तो कहीं गलत कदम ले बैठूँगी ।

पिताजी ! एक तो ऐसे भी मैं पापोदय लेकर आई हूँ, इसलिए विधवा बनी । और, मैं स्त्री हूँ, और स्त्री के स्वभाव में चंचलता होती ही है । उसमें मेरे अगर कोई ऐसे खराब कर्मों का उदय हो जाये, और वासनाग्रस्त बनकर मैं किसी पुरुष के साथ छोटी-बड़ी कुचेष्टा कर बैठूँ तो ? तो अपने महान कुल को कलंक

लगानेवाली बनुंगी ।

पिताजी ! आपका तो चारों ओर बड़ा नाम है, आपकी निर्मल यशकीर्ति चारों तरफ फैली हुई है, मेरा एक छोटा भी अपकृत्य उन सब में कलंक लगा देगा । आपका पूरा कुल मलिन हो जायेगा ।

इससे श्रेष्ठ तो यह है कि “मैं पवित्र अद्वि में स्वयं राख बन जाऊँ ।”

आंखों में आंसु...

शब्दों में नम्रता के साथ दृढ़ता...

हृदय में पवित्रतम् भाव...

रोम-रोम में पिता के कुल की पवित्रता की रक्षा करने का अभिलाष...
पिता राजा भीग गया । खुद की एक मात्र बेटी की महानता को वंदन करने लगा ।

“वाह ऐ वाह ! अभी तक मुझे लगता था कि मुझे एकाद लड़का होता, तो अच्छा होता । परंतु यह मेरी बेटी रत्न है, उसका मुझे पता ही नहीं चला । ऐसी बेटी को पाकर मैं धन्य बन गया ।

इस बेटी का विवेक कितना है ? बुद्धि कितनी है ? वैराग्य कितना है ? अपने कुल के कलंक से डर कितना है ? वाह ! वाह !

जिसमें इतने सभी बड़े-बड़े गुण है, उसे तो पत-पल वंदन करने चाहिए ।

अब तो मुझे विश्वास हो गया कि जब तक ये बेटी मेरे घर में रहेगी, तब तक नक्षी उसके पुण्यप्रभाव से मेरा कल्याण ही होनेवाला है ।

अरे ! ऐसी पवित्र बेटी के तो दर्शन करने से भी मैं पवित्र बन जाऊंगा, उसे याद करने से भी पवित्र बन जाऊंगा, उसके साथ बात करने से भी मैं पवित्र बन जाऊंगा ।

मुझे कोई पुत्र नहीं है, परंतु आज से यह पुत्री ही मेरा पुत्र है ।”

गौतम ! पिताराजा ने यह सब विचार करके मन में दृढ़ निर्णय कर लिया और ऋक्षिणी को कह दिया, “वत्स ! अपने कुल में इस तरह चिता में जलकर मरकर सती बनने का रिवाज नहीं है । तू सुन्दर शीलपालन कर, तेरी इच्छा अनु-सार दान दे, पौष्टि-उपवास आदि कर, विशेष से जीवदया कर...

और हाँ ! सुन... आज से यह शज्य तेरा ही है, तू अब भाविताजा

है ! मेरे मरने के बाद इस राज्य की शजा तुझे ही बनना है । “राजा लकिमणी की जय हो ।”

पिता ने मधुर शब्दों के द्वारा पुत्री को जबरदस्त आश्रासन दिया, लकिमणी को भी पिता की ये सभी बातें सुनकर अत्यंत शांति हुई । “अगर पिता ही मेरे पक्ष में है, मुझ पर विश्वास रखते हैं, तो अब उनके सहारे मैं अवश्य पवित्रतम् जीवन बीता दूँगी...”

राजा ने अंतःपुर के रक्षक अंगरक्षकों को विशेष से सूचना की कि “राजकुमारी को एकदम अच्छी तरह संभालना, रक्षा करना...”

समय पश्चार होने में और परिस्थितियाँ बदलने में कितना समय लगता है ?

पिता राजा की मृत्यु हुई । बुद्धिमान महामंत्रीओं ने इकट्ठे होकर राजकुमारी लकिमणी का राज्याभिषेक किया ।

अब राजकुमारी लकिमणी बन गई राजा लकिमणी !

राजा लकिमणी अब राज्य का सब कारोबार संभालते हैं । महामंत्रीओं का संपूर्ण सहकार और वफादारी है, इसलिए राजा को कोई चिंता सताती नहीं है । और खुद के निर्मल शील का भी प्रभाव तो है ही । अब वह रोज राजसभा भरते हैं । उसमें मंत्री, सामंत, श्रेष्ठि, सेनापति, सभासद और सामान्य प्रजाजन... सब ही बैठते हैं, रोज नई-नई बातों पर भी निर्णय लिये जाते हैं... राजा भी खुद की बुद्धि के अनुसार अच्छा संचालन करते हैं ।

उसमें एक दिन की बात...

उस राजसभा में एक युवान बैठा था, अतिशय रूपवान ! देवकुमार ही लगे... चंद्र को देखने से जैसे मन ललचाता है, वैसे सुंदर आकर्षक रूपवाला ! लकिमणी बैठी थी राजसिंहासन पर ! राज्य संबंधी बाते चल रही थी, और लकिमणी की नजर उस तेजस्वी युवान पर गई, ख्रतम ! पलभर में तो लकिमणी को कामविकार जागृत हो गया, वह खुद की वर्षों की साधना भूल गई । कुल को कलंक नहीं लगने देने का खुद का दृढ़ संकल्प भूल गई, स्त्रीवेदोदय हुआ, और पुरुष की इच्छा प्रगट हो गई । पल दो पल के लिए वह ध्यान खो बैठी । एक ही नजर से उस युवान को राजा लकिमणी देखती ही रही । वह भूल गई कि “खुद

कौन है ? कहाँ बैठी है ? ”

कुदरत की कमाल देखो कि उस युवान की भी उस समय लकिमणी पर नजर गई । युवान ने उनकी आंखों को पहचान लिया । युवान एकदम चतुर था, चेहरे पर से भावों को पकड़नेवाला था । और आंखें तो अवश्य मन के भाव को प्रगट कर ही देती है... उसे इतना पक्ष छ्याल आ गया कि “महासती लकिमणी मेरे रूप में लंपट बनी है । उसकी अभी तक पवित्र ही दिखती आंखों में अभी कामवासना के सर्व स्पष्ट दिख रहे हैं । सर्व उस पवित्रता को डंख दे चूके हैं ।” हैरान हो गया युवान ।

मन तूट गया उसका... “यह क्या ? मेरे रूप नाम की आग में शाजा लकिमणी जैसी पवित्र स्त्री भंवरा बनकर जल रही है । हट् ! धिक्कार हो इस रूप को ! जो किसी के पाप में निमित्त बनता है । यह शाजा मेरे कारण से अनंतदुःख देनेवाला, सिर्फ अंधकार से भरे हुए कामवासना नाम के पाताल में गिर गया है । मुझे अब इस संसार में जीने का कुछ मतलब ही नहीं है । इस पापी शरीर का नाश ही कर दूँ, परंतु उसके पहले घोर प्रायश्चित्त का स्वीकार करूँ, सभी संग का त्याग करके अणगारधर्म का स्वीकार करूँ... जो मेरे सभी पापों को धो दे । भवांतर में बांधे हुए निकाचित जैसे पाप बंधनों को भी कमजोर कर दूँ... ”

कैसी महानता है इस युवान की !

उसे लकिमणी पर दुर्भाव नहीं होता, वह तो सर्वप्रथम खुद के ही दोष देखता है कि “कैसा पापी कि मेरा रूप किसी पवित्र स्त्री की कामवासना में निमित्त हो गया... ”

उसकी विचारधारा आगे बढ़ती है । वैराग्य से भरपूर है वह विचारधारा !

“इस चंचल जीवलोक को धिक्कार हो, जिसकी इन्द्रियाँ इतनी ज्यादा चंचल हैं । खुद के नियंत्रण में नहीं है । आश्र्य है कि ये जीव परलोक के महाभयानक दुःखों को देखते ही नहीं हैं । आश्र्य है कि ये जीव परलोक के महाभयानक दुःखों को देखते ही नहीं हैं । आश्र्य है कि ये लोग सिर्फ इस ही भव के सुखों में दृढ़ आसक्त मनवाले बनकर जी रहे हैं । आश्र्य है कि इन लोगों को ध्यान ही नहीं है कि “मुझे क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए । ”

आश्वर्य है कि इन लोगों की कोई मर्यादा ही नहीं है, परपुरुष पर भी कभी भी, किसी भी पल मन बिगड़ सकते हैं, आश्वर्य है कि इन लोगों में खुद के हित के लिये भी कोई गंभीरता ही नहीं है । सब मजाक रूप ही बन गया है उनके लिये ! आश्वर्य है कि ये लोग शरम का सत्यानाश कर चूके है... ”

ऋक्मिणी की कामवासना को जानकर उस युवान को ऋक्मिणी पर क्रोध नहीं आया । परंतु उस निमित्त को लेकर समग्र जीवलोक के विचित्र स्वभाव के लिये उसे वैशाश्वर्य जागृत होता है । दुनिया में ज्यादातर जीव ऐसे ही प्रकार का अत्यंत निंदापात्र जीवन जी रहे है ना...

मुझे अब इस जगह क्षण भी रहना नहीं है, क्योंकि यहाँ जिन पापों का आगमन हो रहा है, वह मेरे से सहन नहीं हो रहा, और मैं उन पापों को अटका भी नहीं सकता हूँ...

यह बिचारी राजकुल की बालिका ! महासती ! अभी बनी है राजा ! उसने इस मेरे दुष्ट-पापी शरीर के रूप को देखा, उसे आंखों में राग उत्पन्न हुआ, इच्छाएँ प्रगट हुई, बिचारी ने कितने कर्म बांधे... यह मेरा दर्शन उसके लिये कितना अधन्य = खराब = गंदा बन गया ।

अरे, निर्लज्जता ! तुझे धिक्कार हो...

“बस, अब इस पूरे संसार को, इन्द्रियों के पांच विषयों को त्यागकर मैं दीक्षा लूँगा ।” ऐसा दृढ़ निश्चय कर लिया उस कुमार ने !

राजसभा में वह छड़ हो गया, ऋक्मिणी चौंक गई, वह सावधान हो गई । अचानक यह युवान खड़ क्यों हो गया ?... परंतु युवान ने इतना ही कहा “राजसभा में जो बैठे है, उन राजकुल के सभ्य, मंत्री, नगरजन... सभी के पास से मैं क्षमा मांगता हूँ । मेरे मन में भी शत्य = खराब विचार नहीं है । बस, मन-वचन-काया से शुद्धि के साथ क्षमा मांगता हूँ, सभा मुझे माफ करे ।” और तुरंत वह राजसभा में से निकल गया ।

राजसभा के लोग सोचने लगे, “अचानक क्या हुआ ? उस युवान ने माफी क्यों मांगी ?” किसी को कुछ पता नहीं चला । ऋक्मिणी की कामवासना का किसी को अंदाज नहीं आया था, क्योंकि वह वासना अल्प समय के लिये आंखों में प्रगट हुई थी, उसे पकड़ने की ताकत सिर्फ उस युवान में थी ।

ऋक्मिणी को खुद के विकारों का अंदाज था, परंतु “युवान ने मेरे विकारों

को पहचान लिया है, और इसलिए ही वह राजसभा में से उठकर चला गया है”, यह अंदाज नहीं था...

युवान पहुँचा खुद के घर ! उसने इस देश को छोड़ने का निर्णय कर लिया था । जल्दी से उसने मुसाफरी के लिये जल्दी पाठेय (नास्ता) ले लिया, श्वेत वस्त्र पहने, एक हाथ में लकड़ी ली, अरिहंत परमात्मा को वंदन किये, स्तवना की और वह फट फट चलने लगा, चलते-चलते बहुत दूर निकल गया । एक दिन वह पहुँचा हिरण्य-उक्तुरडी नाम की राजधानी में ।

उसे जल्दत थी गुणों के भंडा र सुगुरु की ! वह उनके पास दीक्षा लेकर आत्महित करना चाहता था । उसने ऐसे सुगुरु को ढूँढ़ा, परंतु अभी तक उसे मिले नहीं थे, इसलिये युवान ने सोचा कि “जब तक मुझे मेरे सुगुरु नहीं मिलते, तब तक मुझे इस जगह ही रहना ।” ऐसे करते हुए कितने ही दिन पसार हो गये ।

इन दिनों के दौरान युवान ने इस देश के राजा की बहुत प्रशंसा की, तो उसे इच्छा हुई कि “चलो, मैं उनके पास जाऊं, और उनका परिचय करूँ...”

युवान राजा के पास गया, उचित विनय किया, राजा युवान के तेज से - विनय से बहुत प्रभावित हुआ । दोनों का स्नेह बढ़ , युवान ने उनकी सेवा स्वीकार की ।

एक दिन की बात...

राजा और युवान (हम उसका नाम शीलसज्जाह रखेंगे, *Short* में शील...) दोनों थाथ में बैठे थे । राजा की नजर उसकी उंगली पर गई । अंगुठी दिखाई दी, उसमें कोई नाम चित्रित दिखा । राजा को यह तो पता ही था कि यह युवान पहले दूसरे किसी राजा की सेवा में था, परंतु राजा ने इस बाबत में कभी पूछ नहीं था । अभी यह अंगुठी देखकर राजा को जानने की इच्छा हुई ।

“शील ! तेरी उंगली में जो अंगुठी है, उसमें किसी का नाम लिखा हुआ है ? तुने इतने समय किस राजा की सेवा की थी ? उस राजा ने ऐसा तो क्या तेरा अपमान किया कि तुने वह सेवा छोड़ दी ?”

शीलसज्जाह ने कहा “इस अंगुठी में जिसका नाम है, उसकी मैंने इतने काल तक सेवा की है । और जिसकी मैंने इतने काल सेवा की है, उसका नाम इस अंगुठी पर लिखा हुआ है ।”

राजा बोला “अरे ! यह तो बराबर ! परंतु ऐसी टेढ़ी भाषा क्यों बोल रहा है ?

उसका नाम स्पष्ट तो बोल...”

“नहीं राजन् ! मैं खाना आये बिना उसका नाम नहीं बोलूँगा । मुझे उसकी निंदा नहीं करनी है । परंतु हकीकत यह है कि वह चक्षुकशील है, इसलिये ही अधम है । उसकी आंखों में दूसरे के लिये कामवासना प्रगट हुई थी ।”

राजा : परंतु भोजन किये बिना उसका नाम क्यों नहीं बोला जाता ? और चक्षुकशील यानि क्या ?

शील : “राजन् ! ६३ प्रकार के चक्षुकशील है । अगर यहाँ कोई ऐसा चक्षुकशील दिखेगा, तो मैं आपको नक्की बताऊँगा ।

और भोजन किये बिना उसका नाम नहीं लेने का कारण ये है कि अगर भोजन किये बिना उसका नाम लिया, तो उस दिन मुझे भोजन करने नहीं मिलता, पानी पीने नहीं मिलता...”

आश्चर्यचकित हो गया राजा ! किसी का नाम लेने मात्र से भोजन भी नहीं मिले, वह तो कैसे हो सकता है ? वह मान नहीं रहा था और युवान की दृढ़ विश्वास वाली वाणी को तोड़ नहीं सकता था । राजा ने वहाँ ही परीक्षा करने का नक्की किया । उसने तो तुरंत ही भोजन का थाल वहाँ मंगवाया ।

भोजनमंडप में राजा, शील और बाकी के स्वजन खाना आने को बैठे । राजा ने यभी के लिए अठारह प्रकार की खाद्यवस्तुओं से भरा हुआ आहार मंगाया था ।

अब राजा ने खुद के सामने भोजन का थाल रखा, फिर शील को कहा “अब तू उस चक्षुकशील का नाम बिन्धास्त बोल । मुझे परीक्षा करनी है ।”

शील ने कहा “राजन् ! पूरे दिन भूखा रहना पड़ेगा । ऐसी परीक्षा मत करो । अभी भोजन कर लो, मैं भोजन करने के बाद उसका नाम जल्द बोलूँगा ।”

राजा बोला, “शील ! ले यह कवल हाथ में ले लिया । अब तो मुँह में रखने के लिए पल की ही देरी लगेगी । तू नाम बोल, और मैं कवल मुँह में रखूँगा । अगर ऐसी परिस्थिति में तू नाम बोले, और फिर भी मैं एक कवल भी नहीं खा सकूँ, तो मुझे तेरी बात पर दृढ़ विश्वास आएगा । तो मैं तुझे वचन देता

हूं कि मैं और मेरी सभी शनीयाँ तेरी आङ्गा के अनुसार यह संसार छोड़कर, दीक्षा लेकर आत्महित करेंगे... चल, अब ज्यादा देर मत लगा। बोल, चक्षुकुशील का नाम ! हो जाये परीक्षा ।”

राजा की जिद्द के सामने शील को झुकना पड़ा ।

राजा के हाथ में कवल है। मुँह के पास लाकर रखा है और शील ने कहा “राजन् ! उस चक्षुकुशील अधम आत्मा का नाम है “ऋक्षिणी !”

अभी तो यह नाम बोला और राजा के कान में गया और उस ही क्षण मानो कि बोन्ब फुटा हो उतनी “धब्म” सी बड़ी आवाज सुनाई दी। अतिभयानक आवाज अचानक आने से राजा कांप उठा, उसके हाथ में से कवल थाली में गिर गया। उस ही समय दौड़कर आते हुए सैनिक ने भयानक शब्दों में कहा, “दुश्मनों ने अपनी राजधानी को घेर लिया है, दुश्मन अत्यंत बलवान है, बख्तर पहनकर विशट सैन्य आ पहुँचा है। तीक्ष्ण तलवार, भाला, चमकते चक्र ये सभी शस्त्र उनके हाथ में हैं, “मारे-मारे-मारे” ऐसी चीज जोर-जोर से लगा रहे हैं। उसके कारण से वे अत्यंत भय धैदा कर रहे हैं। ये सैनिक सामान्य नहीं हैं, अनुभवी हैं। बहुत सारे युद्ध लड़ चूके हैं, एक भी युद्ध में वे कभी वापस भागे नहीं हैं। उनके शस्त्रों का घात जीव का ही घात कर देनेवाला होता है। राजन् ! अब आपकी आङ्गा जैसे हो, वैसे करते हैं ।”

राजा उस परीक्षा की बात ही भूल गया, क्योंकि ऐसे दुश्मन के साथ लड़ने की शक्ति उसके पास नहीं थी। वह बहुत घबरा गया। शीधा शील सज्जाह के पैर में गिरा ।

“शील ! तेरी बात एकदम सत्य साबित हुई...” बस, राजा के दिमाग पर मौत का भय सवार हो चूका था। वे भूल गये थे कि “हम क्षत्रिय हैं, हमारे कुल में कभी भी युद्ध की परिस्थिति में कोई भागता नहीं है, लड़ता है, जीतता है अथवा मर जाता है।” परंतु यह सब भूलकर राजा एक दिशा में भाग गया, खुद की शनीयाँ, पुत्र-पुत्रीयों को साथ में लेकर भाग गया। प्रजा का विचार करने की फुर्सत इस समय राजा में नहीं थी।

शीलसज्जाह अकेला रह गया वहाँ, वह भी भाग सकता था, परंतु वह भी क्षत्रिय था। उसने तो एक ही विचार किया, “हमारे कुल का यह रिवाज ही नहीं है, इस तरह पीठ दिखाकर भाग जाना।” परंतु मैं अब दुश्मनों पर प्रहार

भी नहीं करेंगा, क्योंकि मुझे तो दीक्षा लेनी है। भाव से तो साधु बन चूका हूं, सिर्फ सुगुण मिले, उतनी ही देरी है। मैं अहिंसा धर्म को जानता हूं, मैंने हिंसा के पच्चकथाण ले लिये हैं, इसलिए एक भी दुश्मन को मारनेवाला तो नहीं हूं। तो मुझे क्या करना? भागना नहीं है और मारना नहीं है...

हाँ! मैं सागार अनशन कर लूं, यह आपत्ति जब तक दूर नहीं हो, तब तक चारों आहार का त्याग कर लेता हूं। मर जाऊंगा तो अनशन में मरेंगा... जीऊंगा, तो दीक्षा लुंगा।

अथवा

दूसरा भी एक रस्ता है, मैंने वह तो अभी स्पष्ट देख लिया है कि जो जीव मात्र चक्षु से कुशील है, उसका तो मैंने सिर्फ नाम ही लिया है, तो भी इतना भयंकर उत्पात मच गया तो अब मैं शील की परीक्षा कर लूं, मेरे पास निर्मलशील है, उसका प्रभाव क्या है? वह भी देख लेता हूं।”

अनशन करने का विचार छोड़ दिया शीलसन्नाह ने! और बुलंद आवाज से वह बोला... “अगर पूरे जीवन में मैं सिर्फ वचन से भी कुशील बना हूं, तो इस राजधानी में से मैं क्षेमपूर्वक अक्षत देहवाला बाहर नहीं निकल सकुं ऐसा हो जाये। मेरा शरीर कट जाये।

परंतु अगर मैं मन-वचन-काया से सर्वप्रकार से शील का धारक हूं, तो दुश्मन मुझ पर हुजारों प्रहार करे, तो भी मुझे एक भी प्रहार लगना नहीं चाहिए। एक भी घाव होना नहीं चाहिए। खून की एक बुंद भी निकलनी नहीं चाहिए।”

निश्चित बन गया शील!

निर्भय बन गया शील!

“नमो अरिहंताणं।” इस महामंत्र का उच्चार किया और नगर के मुख्य दरवाजे में से ही बाहर निकलने लगा। सामने ही दुश्मनों की विशेष भयानक सेना थी, परंतु बेधड़क बनकर शील सड़सडाट चलने लगा।

वह अभी तक तो थोड़ा ही चला होगा और दुश्मनों की नजर उस पर पड़ी। वे समझे कि “नगर का राजा ये है, परंतु वह वेषपरिवर्तन करके भाग रहा है।” इसलिये “मारो-मारो... काटो-काटो।” बोलते हुजारों दुश्मन सैनिक

फटाफट ढौड़े शील के सामने ! उनके हाथ में खुल्ली तलवार है । शील संपूर्ण निःशस्त्र है । उन खुंखार सैनिकों का सिर्फ एक ही प्रहार लगे, तो शरीर के दो टुकड़े हो जाये... बलवान भी डर जाये, ऐसा वह दृश्य था, परंतु शील नहीं डरा, क्योंकि शील के पास शील का संरक्षण था ।

शीलसज्जाह के मन में कोई विषाद नहीं है, कोई जल्दबाजी नहीं है, कोई भय नहीं है, कोई दुःख नहीं है, कोई दीनता नहीं है... गौतम ! उसने भी उन सैनिकों को बुलंद आवाज में कहा ।

“दुष्ट पुरुषों ! आप मेरे पर ज्यादा तामसभाववाले बने हो, परंतु ध्यान से सुन लो । मैं ही आपका दुश्मन राजा हूं । अनेकबार शुभ भावों के द्वारा मैंने पुण्य का भंडार इकट्ठा किया है । आप मुझे ही मारने आये हो ना, मैं सामने से चलकर आपके सामने आया हूं । आप फिर बाद में ऐसे मत कहना कि “इस नगरी का राजा हमारे भय से छुप गया ।”

अब आप लोगों में ताकत हो, तो करो प्रहार !”

नगर का सच्चा राजा तो भाग गया था, परंतु शील ने खुद की पहचान इस नगर के राजा की तरह बताई, क्योंकि तो ही वे सैनिक ज्यादा क्रूरता के साथ प्रहार करते, उससे ही तो खुद के शील की सच्ची परीक्षा होती ।

शील का दूसरा आशय यह भी था कि “इस नगर का राजा खुद का उपकारी तो था ही । वह अभी भाग गया है, यह दुश्मनों को पता चले, तो राजा की इज्जत जायेगी...” इसलिये खुद ही राजा की तरह खुद की पहचान देता है ।

शील सज्जाह अंत में इतना बोला कि, “ताकत हो, तो प्रहार करो ।”

परंतु गौतम ! यह वाणी बोली और सभी सैनिक उसी ही क्षण पत्थर की तरह स्थिर हो गये । शरीर का एक अंग भी हिला सकने में असमर्थ बन गये । कारण ? शील की भाषा शील से अधिक्षित थी, इसलिए ही देव भी उसके वचनों का उल्लंघन नहीं कर सकते थे । तो बिचारे इन मानवों की तो क्या बात ?

इस तरफ शीलसज्जाह भी अतिथकान के कारण से बेहोश होकर जमीन पर गिर गया ।

इस तरफ जो सच्चा राजा भाग गया था, वह सुरक्षित स्थान में पहुँच

गया । फिर उसने खुद के गुप्तचरों को आदेश किया कि “आप जल्दी नगर में जाओ, और यह तलाश करके आओ कि वज्र-इंद्रनील-चंद्रकांतमणि, सूर्यकांतमणि, उत्तममणिओं की राशि-अर्जुनसुवर्ण-तपनीय सुवर्ण-जांबुनद सुवर्ण-अनेक- जातिवाले मोती-विद्रूम... इन सभी से भरे हुए अपने भंडार का क्या हुआ ? और अपनी चतुरंगी सेना का क्या हुआ ?

और हाँ ! पुरुषों में सिंहसमान, शुद्धशीलसंपन्न शीलसज्जाहकुमार का क्या हुआ ? वह सब तुम देखकर आओ... तो मुझे शांति होगी ।”

राजा को चिंता तीन चीजों की थी -

👑 खुद की समृद्धि धनभंडार सुरक्षित है या नहीं ?

👑 खुद की चतुरंगी सेना लड़ाई कर रही है या भाग गई है ? या मर गई है ?

👑 परमपवित्र शीलसज्जाह का क्या हुआ ? वह जिद्दा है या मरा हुआ है ?...

उनके गुप्तचर विशिष्ट प्रकार के थे ।

👑 सभी कार्यों में समर्थ थे । 👑 सभी लोगों के बीच घुमते रहते थे । 🎀 जलरत पड़ती तो नीडर बन जाते ।

👑 जलरत पड़े तो डरयोक बनते । 🎀 जलरत पड़े तो विचक्षण = चतुर बनते । 🎀 जलरत पड़े तो मूर्ख बनते ।

👑 जलरत पड़े तो शूरवीर बनते । 🎀 जलरत पड़े तो कायर बनते । 🎀 एकदम चतुर थे ।

👑 चाणक्य के वारिस ही समझा लो । 🎀 बहुत सारे प्रयंचों से भरे हुए थे ।

👑 इच्छा हो तो संधि कराते इच्छा हो तो झगड़ा कराते... 🎀 छल-कपट में सर्वोपरि थे ।

ऐसे गुप्तचरों को पलायन राजा ने काम सौंपा ।

राजा की इतनी अधमता तो थी कि “वह भाग गया ।” और इतनी माया भी तो थी कि “मायावीयों के पास माया के काम कराता है ।”

गुप्तचरों ने राजा को प्रणाम किया और पवनवेगी घोड़ो पर चढ़कर पर्वत, तालाब, गुफाएँ, एकांत प्रदेशों को पसार (पार) करते करते राजधानी के पास पहुँचे, परंतु वहाँ का दृश्य देखकर वे आश्चर्यचकित हो गये ।

॥४॥ दुश्मन राजधानी को थोड़ा भी नुकसान पहुँचा नहीं सके थे ।

॥५॥ घोटा युद्ध हुआ हो उसके भी कोई चिन्ह दिखाई नहीं दे रहे थे...

॥६॥ और सबसे बड़ी बात, उस नगर के मुख्य दरवाजे के बाहर विशट खुले मैदान में बीच में शीलसज्जाह खड़ा था, और वह खुद के दोनों हाथ के छारा खुद के मस्तक के बालों का लोच कर रहा था ।

॥७॥ और उसके आगे खड़ी थी देवी ! जिसने सुवर्ण के आभूषण पहने हुए थे । जिसके प्रकाश से दश दिशाएँ प्रकाशित बनी थी, वह देवी लगातार “जय जय जय जय” ऐसे मंगलकारी शब्द बोल रही थी और उसने दो हाथ कमलाकार से जोड़े हुए थे, उन दो हाथ में ओघा शोभा दे रहा था ।

हा ! रजोहरण ! साथ में मुहृपत्ति ! मुनि का वेष !

शीलसज्जाह स्वयं लोच करके दीक्षा ले रहा था ।

देवी उसे मुनिवेष देने के लिये उपस्थित हुई थी...

अद्भुत था वह दृश्य !

वे गुप्तचर तो यह देखकर अत्यंत आश्चर्यचकित हो गये ।

मानो कि पुतले बन गए हो, इसतरह एकदम स्थिर होकर देख रहे थे । उनकी गुप्तचर विद्या बिचारे उस पल के लिए तो भूल ही गये थे...

हकीकत यह थी कि जब शील भान में आया, तब दुश्मन तो उसके शरण में आ ही गये थे । सभी ने उसका सामर्थ्य देख ही लिया था, और साक्षात् देवी भी उपस्थित हो गई थी और दीक्षा लेने का परिणाम था ही, और अब उसका अवसर आ गया था । देवी रजोहरण के साथ उपस्थित हो गई, इसलिए सत्त्वशाली शीलसज्जाह ने वहाँ के वहाँ ही खुद के दोनों हाथों से लोच शुरू कर दिया था ।

गौतम ! उस ही समय आकाश में शासनदेवी भी प्रगट हो गई । वह अत्यंत खुश थी, खुशी के कारण उसका शरीर रोमांचित हो चूका था । आकाश में रहकर ही शासनदेवी ने उच्चार किया “गमो अरिहंताणं ।”

शील ने आकाश में शासनदेवी को देखा, उसकी खुशी देखी । उसके शब्दों

को सुना, अत्यंत प्रसन्न हो गया शील !

शासनदेवी बोलती है...

“— सुनो, जो बलवान् पुरुष खुद की मुष्ठि के प्रहारों के द्वारा मेलपर्वत का चूरा करने में समर्थ हो, जो शक्तिमान् पुरुष हाथ में धरती को धारण करने में समर्थ हो, जो समर्थ पुरुष एक ही घुट के द्वारा पूरे समुद्र को खिंचने के लिए समर्थ हो... जो पुरुष पलभर में तीनों भुवन का कल्याण करने में समर्थ हो, जो बलवान् पुरुष स्वर्ग में से इन्द्र को जमीन पर गिरा सकता हो... ऐसा पुरुष शीलपालक आत्मा पर कितना भी क्रोध से भर जाये, तो भी वह अखंडित शीलवालों का बाल भी टेढ़ नहीं कर सकता है ।

— कुल में जन्मा हुआ जो पुरुष या स्त्री खुद के शील का खंडन नहीं करते, हम उसे ही जन्मा हुआ गिनते हैं, वह तीनों भुवन को वंदनीय है ।

— शील परमपवित्र है । महापुरुषों ने शील का सेवन किया है, शील सभी पापों का नाश करने वाला है, शील सभी सुखों का भंडार है । यह शील हमेशा जय पाता है ।”

शासन देवी खुश-खुश होकर आकाश में से शील की महिमा गाती है । नीचे शील, दुश्मन की सेना, गुप्तचर और दूसरे भी अनेक लोग आश्र्य के साथ यह सब सुनते हैं और शासनदेवी उस ही समय शीलसन्नाह के ऊपर आकाश में से पुष्पों की वर्षा करती है । लोगों को शील के प्रति अतिशय बहुमानभाव वैदा होता है ।

शासनदेवी वापस बोलने लगी ।

“— लोग खुद के पूर्व में किये हुए कर्मों के द्वारा ही परेशान होते हैं, किर भी वे खुद के भाग्य को -विधाता को दोष देते हैं कि “मेश भाग्य खराब है ।” हकीकत में तो उनकी खुद की ही पूर्वजन्म की भूल है, भाग्य उन भूलों में से ही उत्पन्न हुआ है, परंतु उन्हें वह दिखता नहीं है ।

— भाग्यविधाता तो मध्यस्थभाव में रहनेवाला है, सभी को समानदृष्टि से देखता है, सभी लोगों के विश्वास का स्थान है । वह किसी को देने का और किसी के पास से छिन लेने का भी कार्य करता नहीं है, परंतु लोग उस पर सब दोष देते हैं ।

- इसलिए हे इंसानो ! शीलगुण से महान इस शील को सर्वोत्तम जानना, और कषाय भाव को छोड़कर शीलसज्जाह के चरण कमल में नमस्कार करो ।”
इतना बोलकर शासनदेवी अदृश्य हो गई ।

गुप्तचर तेजी से वापस घुमे, और राजा को विस्तार से सब बात की ।

राजा यह सब सुनकर अत्यंत आश्र्यचकित हुआ । उसने चक्षुकशील के नाम मात्र ग्रहण का खराब फल नजर के सामने देख लिया था और अब शील का ऐसा उत्कृष्ट फल भी देख लिया था । राजा के मन में उसके कारण बहुत सारे विचार चलने लगे । उसके हृदय में यह सब जानने की बहुत ही उत्कंठा पैदा हो गई ।

उसका मन एक तरफ से हर्ष से भरा हुआ था, तो दूसरी तरफ चक्षुकशीलता के ऐसे विपाको के कारण से दुःख से भी मिश्रित था ।

हाँ ! अब उसे भय नहीं था । इसलिए ही उसे कोई दुःख नहीं था, बस ! कुतूहल जबरदस्त था । वे गुप्तसुरंग के शास्त्र से राजधानी में पहुंचे । छोटा दरवाजा ओलकर वे बाहर आए तो सही, परंतु दुश्मन सेना का स्मरण होते ही उसके पूरे शरीर में कंपन फैल गया, फिर भी कुतूहल बहुत था । शीलसज्जाह को देखने की उत्कंठा बहुत थी, इसलिए वह उस प्रदेश में पहुंच गया, जहाँ शील ने दीक्षा ली थी ।

वहाँ उन्होंने शीलसज्जाह के दर्शन किये ।

शीलक्रषि को दीक्षा लेकर अभी कुछ ही काल व्यतीत हुआ था, परंतु उतने में ही उन्हें अप्रतिपाति बड़ा अवधिज्ञान प्रगट हो गया था । शीलक्रषि सिंहासन पर बैठे थे । खुद सौधर्मेन्द्र शीलक्रषि के पीछे श्रेत छव लेकर खड़े थे । हजारों देव, मानव वहाँ देशना सुनने के लिये बैठे थे । शीलमुनि अवधिज्ञान के प्रभाव से लोगों के असंख्य भव तक का जानकर उस अनुसार सभी को उनके पूर्वभव के सुख-दुःख दर्शा रहे थे । सम्यक्त ज्ञान-चारित्र का लाभ किस तरह हो सकता है ? वे बता रहे थे । संसार का स्वभाव कैसा है ? वे कह रहे थे । कर्मबंध से

कैसे मुक्त हो सकते हैं ? वे बता रहे थे । अहिंसास्वरूप साधुधर्म का वर्णन कर रहे थे । मानव, देव सभी एक चित्त से भुन रहे थे ।

जीवन में प्रथमबार राजाने, उसके परिवारने ऐसा आश्र्य देखा था । वे

सभी प्रतिबोधित हुए । ऐसे भी राजा ने वचन दिया था कि “अगर चक्षुकुशील की परीक्षा शील सच्ची साबित करे, तो वे सभी शील की आज्ञा के अनुसार आत्महित के मार्ग पर आगे बढ़ेंगे ।”

इसलिए राजा और पूरे परिवार ने वहाँ दीक्षा ली, और उस दृश्मन राजा ने भी प्रतिबोध पाकर दीक्षा का स्वीकार किया । रणभूमि वैराग्यभूमि बन गई । चारों निकाय के देवता उस समय इकट्ठे हुए ही थे । उन्होंने आकाश में दृढ़भिं का गंभीर नाद गूंजा दिया, और देवों ने शीलसन्नाह की अनुमोदना की...

“—आठ कर्म की गांठों का विनाश करनेवाले, महायशस्वी परमेष्ठि ! जय पाओ, जय पाओ ! चारित्र-ज्ञान-दर्शन से युक्त महापुरुष ! जय पाओ, जय पाओ...”

— इस जगत में एक ही वह माता पल-पल वंदनीय है, जिस माता ने मेरुपर्वत जैसे ढृढ़ ऐसे इस मुनिराज को खुद की कुक्षि में नौ महिने धारण किया ।”

इस तरह से देव बोले और उन्होंने युगंधी पुष्पों की वर्षा की, भक्ति से भरे हृदय से वे चारों निकाय के देव हाथ जोड़कर शीलसन्नाह के चरणों में झुके ।

देवांगनाएँ भी नृत्य करने लगी ।

देव-देवीयों ने बारबार स्तवना करके, बारबार नमस्कार करके, लंबे समय तक मुनि की निशा में रहकर खुद-खुद के स्थान में चले गये ।

गौतम : भगवान ! शीलसन्नाह मुनि ऐसे सुलभबोधि किस तरह हो गये ? सिर्फ राजा ऋक्षिणी की उन पर खराब ढृष्टि गई, और उन्हें दीक्षा लेने के भाव हो गये... पूरा संसार असार लग गया... और खुद भी निर्मल शील के धारक बन गये, यह सब अत्यंत आश्चर्य उत्पन्न करवाता है... मुझे तो इतना ही जानना है कि उस मुनि ने पूर्वभव में ऐसी तो क्या आशाधना की थी जिसके कारण से उन्हें एकदम सामान्य निमित्त से वैराग्य हो गया, महामुनि बन गये, अवधिज्ञानी बन गये...

वीर : गौतम ! पूर्वभवों में वे एक भव में मुनि थे । वहाँ उन्होंने सावद्यभाषा बोली थी, यानि कि वचनदंड नाम के पाप का स्वेच्छ किया था । उन्हें उसके बाद उस पाप का बहुत पश्चात्ताप हुआ । गुरु ने उन्हें उपदेश दिया कि

“आप पूरी जिंदगी मौनव्रत ले लो ।”

गौतम ! गुरु के उपदेश से मुनिने पूरी जिंदगी मौनव्रत का पालन किया और संसारीओं में जो तीन सबसे बड़े पाप हैं पानीहिंसा + अश्विहिंसा + मैथुन... ये तीनों इस मुनि ने सभी उपायों के द्वारा त्याग दिया था... इन दो के प्रताप से शीलसज्जाह सुलभबोधि बन गये ।

गौतम ! समय पसार होता गया, और एक दिन शीलसज्जाह महर्षिने निश्चय किया कि “समेतशिखर वर्वत पर जाकर अनशन करना ।”

और बहुत सारे शिष्यों के साथ उन्होंने समेतशिखरजी की तटक प्रयाण शुरू किया । विहार करते-करते शस्ते में वे उस ही नगर में पहुँचे, जहाँ राजा ऋक्मिणी राज्य करती थी, जो चक्षुकुशील बनी थी, और खुद के पाप की निंदा-गर्हा आदि की नहीं थी ।

राजकुल में समाचार पहुँचे कि “शीलसज्जाह क्रषि पधारे हैं, साथ में विशाल शिष्य वर्ग है...”

राजा ऋक्मिणी को तो पता ही नहीं था कि “ये वे ही क्रषि हैं, जिन्हें देखकर खुद को जीवन में प्रथमबार और अंतिमबार परपुरुष पर कामवासना जागृत हुई थी ।” वह तो खुद के उस छोटे मलिन भूतकाल को कभी की भूल गई थी ।

राजा ऋक्मिणी वंदन करने के लिये उद्यान में पहुंच गई । शील क्रषि को भावपूर्वक प्रणाम किया, और खुद के उचित स्थान पर बैठ गई...
मुनि ने विस्तार से देशना दी ।

यह देशना सुनकर ऋक्मिणी को वैराग्य प्रगट हुआ, और खुद के स्वजन वर्ग के साथ उसने क्रषि को विनंति की कि “मुझे दीक्षा दो ।”

और गौतम ! उस समय उन्हीं राजा की = ऋक्मिणी की खुद के स्वजनवर्ग के साथ दीक्षा भी हो गई ।

राजा ऋक्मिणी अब साध्वी ऋक्मिणी बन गई । वैराग्य प्रचंड था, इसलिए ऋक्मिणी और बाकी के स्वजन भी घोर तप करने लगे, करोए संयम पालने लगे । सामान्य इंसान तो जिस तप-संयम में अत्यंत दुःख पाते हैं, और उन्हें वह करना लगभग शक्य नहीं होता, वैसे वे घोर तप-संयम थे । उस ऋक्मिणी आदि ने खुद

के शरीर की लेश भी सारसंभाल लेनी छोड़ दी थी । कहीं भी द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव में राग किये बिना वे संयमजीवन में विचरण कर रहे थे । चक्रवर्ती-देवेन्द्र आदि की समृद्धि और शरीर के सुखों में वे अत्यंत निःस्पृह बन गये थे ।

गौतम ! इस तरह जीने में उनका समय सुखपूर्वक व्यतीत हो रहा था, और वे शीलक्रष्णि के साथ श्री समेतशिखरजी के पास पहुँचे ।

शीलक्रष्णि को ध्यान में था कि झङ्गाध्वी ऋक्मणी ने चक्षुक्षीलता के दोष का सेवन किया है । चाहे वह संसारीयणे में किया था, और ऐसे देखे तो छोटा था, परंतु उसकी शुद्धि करनी तो जल्दी है, उसमें भी अब तो अनशन स्वीकारना था... ”

शीलसन्नाह क्रष्णने साध्वी ऋक्मणी को बुलाया । उनके हित के लिये बहुत वात्यल्य के साथ बताया कि “साध्वीजी ! आपको धन्य है कि आप सालों तक राजा रहे और फिर वैराग्य पाकर दीक्षा का स्वीकार किया । दीक्षा के बाद कैसे घोर तप-संयम का पालन कर रहे हो, तो अब आप जल्दी से एकदम शुद्धभाव के साथ, आपके इस भव के सभी पापों की आलोचना कर लो... और देखना... मन में लेश भी अहंकार मत रखना, छोटे-बड़े पाप तो सभी से हो जाते हैं । आलोचना में किसी भी प्रकार का शल्य मत रखना । हम सभी अब शरीर का त्याग करने के लिये कटिबद्ध बने हैं, इसलिये सिर्फ आपको ही नहीं, हम सभी को सभी शल्य निकालकर आलोचना करनी है, आत्मसाक्षिकी निंदा करनी है, गुरु के पास गर्हा करनी है, उसके बाद गुरु ने दिये हुए प्रायश्चित्त का एकदम शुद्ध आशय के साथ वहन करना है । इस तरह आत्मा में रहे हुए पापशल्य को दूर करना है उसके बाद जिनेश्वर भगवंत की बताई हुई संलेखना करनी है, उस संलेखना को करने के बाद देहत्याग = अनशन करना है ।

इसलिए सर्वप्रथम तो शुद्ध आलोचना ही करनी है... ”

साध्वी ऋक्मणीने सभी के सभी पापों की सरलभाव से आलोचना की, परंतु चक्षुक्षीलता के पाप की आलोचना नहीं की, शायद उन्हें वह पाप याद नहीं आया...

महामुनि परमोपकारी शीलसन्नाह क्रष्ण ने उस समय याद करवाया...

“साध्वीजी ! दुष्कर तप-संयम के आशधक ! याद है ? जब आप राजा

थे, और आपके राजसभा में एक रूपवान, तेजस्वी युवान पर आपकी नजर पड़ी थी, और तब आपको राग जागृत हुआ था, विकारभाव प्रगट हुआ था, थोड़ी पल तक आप उसे देखते रहे थे, वह तेजस्वी युवान मैं ही था... बस ! उस पाप की आलोचना ले लो, उस समय के आपके भाव बता दो, जिससे आपकी श्रेष्ठ विशुद्धि हो जाये... ”

चौंक उठे साध्वी ऋकिमणी ! याद तो आ गया उन्हें खुद का वह पाप ! क्योंकि खुद के जीवन में अबसे बड़ा कलंक भाव वही तो था, परंतु वह स्वीकारने के लिये मन मनाई कर रहा था । उनके मन में भारी संताप शुल्ह हो गया ।

“अगर मैं ऐसे स्वीकारङ्गी कि “हाँ ! उस समय मैंने आपको = उस युवान को रागदृष्टि से देखा था, मुझे आपकी इच्छा प्रगट हुई थी , तो मेरा कैसा लगेगा ? लोग मेरे लिये कहेंगे कि बाल ब्रह्मचारी राजा ऋकिमणी ने आंखों में वासना के दोष का सेवन किया था, वे चक्षुकुशील बने थे और वे अभी साध्वी बनकर इस साध्वीवृद्ध में रहते हैं । राजा के बेटी की अभी ये हालत है... ”

और गौतम ! हाथी निकल गया, पूँछ कंस गई... यह कैसा विचित्र लगेगा ना ! ऐसे चक्रवर्ती और इन्द्र के सर्वोत्तम सुखों में वे साध्वी निःस्पृह बन गये, परंतु इसलोक की खुद की छोटी यशकीर्ति के राग को वे छोड़ नहीं सके । और गौतम ! मायामृषावाद का सेवन कर लिया साध्वीने... दुर्भागी श्रमणीने !

वे बोले “भगवंत ! मैंने आपको उस समय कुछ पल तक देखा था सही, परंतु ऐसे किसी रागभाव से देखा नहीं था, उसमें कोई कामवासना नहीं थी, ऐसा भी कोई विचार नहीं था कि “मैं आपको प्राप्त करूँ और आप मुझे मिल जाओ ।”

परंतु उस समय मैंने आपके लिये सुना था कि “आप बहुत रूपवान हो, सौभागी हो, कलाओं के भंडार हो, विशिष्ट ज्ञान संपन्न हो, अनेक गुणों के मालिक हो और आप मैथुनादि संसारसुखों में एकदम वैरागी हो - और आपको उस समय देखा, तो विचार आया कि “इस युवान के लिए जिस अनुसार सुना है, वह वैसा ही लग रहा है ? या फिर कुछ अलग ?” इसलिए यह जानने की इच्छा से आपको कुछ पल तक एक ही नजर से देखा था । इस तरह देखने से तो इंसान के स्वभाव आदि का अंदर आ ही जाता है...

आपको मेरी आंखों में जो राग दिखाई दिया था, वह तो कुतूहलवृत्ति थी। आपके लिए सुने हुए गुणों की परीक्षा करने की इच्छा थी। बाकी कामराग तो बिल्कुल नहीं था।

हाँ! वह जो रागभाव था, वह भी अगर दोष हो, तो अभी ही वह मैंने कह ही दिया है, उसकी आलोचना हो ही गई है। यह आलोचना करने में मुझे कुछ तकलीफ नहीं है।

साहेबजी! मैं अभी महान तीर्थ में आई हुई हूँ। आप सोचो कि कोई तीर्थ में आकर १०० सुवर्णमुद्रा का दान करे, तो उसमें माया-कपट क्यों करेगा? एक तो इतना बड़ा दान करना और उसमें तीर्थ में माया-कपट किसलिए करना? वैसे अभी मैं आलोचनादान लपी श्रेष्ठदान कर रही हूँ। ऐसे कार्य करने में ऐसे महान तीर्थ में मायाकपट किसलिए करूँ?

बस, आपके लिए जो सुना था, वह सच्चा या गलत? वह तलाशने के लिये मैंने आपकी तरफ एकटक नजर से देखा था। उसमें जो राग था, वह मेरा दोष! उसका स्वीकार करती हूँ। परंतु कामवासना नहीं थी, आपको प्राप्त करने की कोई इच्छा प्रगट नहीं हुई थी....”

शीलक्रषि तो स्त्री के चंचल स्वभाव को देखते ही रहे। संसार की यह सब विचित्रता देखकर उन्हें परम वैराग्य हुआ। वे खुद के साथ ही बाते करते हो इसतरह बोलने लगे,

“ स्त्री के इस पापी चंचल स्वभाव को धिक्कार हो! आत्मन्! देख तो सही... सिर्फ इतने अल्पकाल में इस साध्वी ने कैसी माया की?...”

 ये दुर्जन स्त्रियाँ कैसी होती हैं? उनका मन कितना चपल है, चंचल है, किसी भी एक वस्तु में स्थिर रहता ही नहीं है। एक यत के लिए भी स्थिर नहीं। इन लोगों का जन्म ही सच में खराब है... कोई भी खराब काम करने ऐसी स्त्रियाँ तैयार हो जाती हैं... बाप ऐ! सभी अपयश-अपकीर्ति की वृद्धि को करनेवाली है ये स्त्रियाँ! उनका अध्यवसाय पाप कर्मों में कितना ज्यादा ढूँढ़ होता है।

ये स्त्रियाँ “परलोक में नरक-तिर्यच में जाना पड़ेगा।” ऐसे किसी डर से डरती नहीं हैं। उसके भयानक दुःखों का डर उन्हें सताता नहीं है। वहाँ

अति तस (दहकती) कद्दर्ह में तेल में तलेंगे, वृक्षों के पत्ते कटवत की तरह उन्हें काटेंगे... ऐसे सभी हजारों असह्य दुःख उन्हें पता होने के बावजूद भी वे डरती नहीं हैं।

शीलक्रषि को अतिशय दुःख हुआ। उनका मन करुणा से भर गया। वे जानते थे कि “इस एक छोटी भूल का भयानक फल इस साध्वी को कैसा मिल सकता है।”

इसलिए ही एकदम शांत, एकदम मधुर वचनों के द्वारा वे साध्वी को समझाने लगे, “श्रमणी ऋक्मिणी! आप ने अभी तक प्रचंड वैराग्य के साथ घोरातिघोर तप-संयम का आचरण किया है, स्वाध्याय और ध्यान का आचरण किया है। उसके द्वारा आपने ऐसा पुण्य इकट्ठा किया है कि वह तुम्हें जल्दी-जल्दी मोक्ष में पहुँचाएगा। दुःखमय तो नहीं ही, परंतु सुखमय संसार भी नहीं बढ़ाएगा।

परंतु आप अगर माया-कपट करोगे, तो ऐसा अत्यंत निर्मल पुण्य निष्कल जायेगा।

इस पुण्य की ताकत है कि आपको एक-दो-तीन भव में मोक्ष दे दे, परंतु अगर आपने अल्प भी माया की, तो वह अनंतसंसार दे सकती है। इसलिए उसे आप छोड़ दो, उससे कोई कायदा नहीं है। अभी भी कुछ बिगड़ा नहीं है, माया छोड़कर सरलभाव से आलोचना कर लो, और आत्मा को यवित्र करो।

अंधकार में कोई नर्तकी नृत्य करे, तो उसका नृत्य निष्कल ही जाता है, क्योंकि उसे कोई देख नहीं सकता है। गरम-गरम सुवर्ण को फुंक मारो, तो फुंक निष्कल जाती है, क्योंकि एक फुंक से वह ठंडा नहीं ही होनेवाला है।

वैसे, आप लोच करवाते हो, ४२ दोषरहित भिक्षा लाते हो, भूमि पर संथाश करते हो, २२ परिषहों को सहन करते हो, उपसर्गों को सहन करते हो, सब कायकलेश निष्कल जायेगा। कोई फल नहीं मिलेगा, अगर आप अल्प भी माया करोगे तो...”

सच्चा हृदयद्रावक उपदेश था शीलक्रषि का।

परंतु साध्वीयणे को तोड़कर नष्ट करनेवाली ऋक्मिणी साध्वी ज्यादा से ज्यादा जड़ बनती गई।

“भगवंत ! आपके साथ छल-कपट-माया के साथ बात किस तरह से कर सकते हैं ? उसमें भी जब आलोचना देनी हो, तब तो किसी भी कारणवश माया नहीं ही की जाती । आप मेरी बात किसी भी प्रकार की शंका किये बिना सच्ची मानना... मैं वापस आपको कहती हूँ कि मैंने उस समय आपको कामराग से, आपको पाने की इच्छा से देखा नहीं था, परंतु आपके लिए जो सुना था, उसकी सच्चाई जानने के भाव से देखा था... यह एकदम सत्य है ।”

ऋक्षिणी साध्वी इतना बोले, और शीलकषि उन्हें कुछ ज्यादा समझाये, उसके पहले ही उस ही समय उस ही मायाकपट के भाव के साथ साध्वीजी अचानक ही मृत्यु को प्राप्त हुए । उनका आयुष्य उसी समय पूरा हो गया, परंतु उस अंतिम समय में उन्होंने उत्कृष्ट स्थितिवाला निकाचित स्त्रीवेद कर्म बांध लिया था ।

गौतम : प्रभु ! किर उस शीलसज्जाह क्रषि का क्या हुआ ?

वीर : गौतम ! उन्होंने अपने शिष्यगण के साथ विधिपूर्वक संलेखना की, उसके बाद अंत में पादपोपगमन अनशन का स्वीकार किया । एक महीने तक अनशन रहा, अंत में समेतशिखर पर्वत पर ही केवलज्ञान पाकर मोक्ष में गये । उनका शिष्यपरिवार भी उसी तरह मोक्ष में गया ।

(संलेखना = अनशन करने की पूर्वभूमिका = प्रेक्टीस...)

पादपोपगमन : वृक्ष की तरह एक ही अवस्था में रहना, लेश भी हलन-चलन नहीं करना... इस तरह रहकर चारों आहार का त्याग ।)

गौतम : ऋक्षिणी साध्वी का क्या हुआ ?

वीर : उसने अंत में माया की थी, इसलिए विद्युतकुमार नाम के जो भवनपति देव है, उनकी देवीयों की नौकरशनी की तरह उत्पन्न हुई । एक देवी के नेवले वाहन के रूप में उसे काम करना यानि कि ऐसे तो खुद देवी, परंतु जब खुद की मालकिन देवी आदेश करे, तब नेवला का स्वरूप बनाकर उसके पास उपस्थित होना, और वह देवी उस पर बैठकर पर्यटन करती है ।

वहाँ से मरकर बाद में अनेक भवों में बारबार जन्म-मृत्यु के चक्र में वह भटकती रही । मनुष्य और तिर्यचों में उसके भव हुए । वहाँ दुःख + दौर्भाग्य + निर्धनता उसके हमेशा के साथी रहे । हरेक भवों में लोगों के धिक्कार-तिरस्कार

पाकर, इस तरह खुद के कर्मों को भोगती रही। ऐसे करते-करते १ लाख भव पसार हुए, और उसके बहुत सारे कर्म खत्म हुए। एक लाखवें भव में चक्रवर्ती और बाद में आचार्यवद प्राप्त हुआ, वहाँ निरतिचार चारित्र का पालन किया, सभी प्रमादों को छोड़ दिया, पूरी शक्ति के साथ उद्यम किया, संसार के अंकुर को लगभग जला दिया! गौतम! सब बराबर हो गया।

परंतु चक्रवर्षीलता की शुद्ध आलोचना की नहीं थी, उस कारण से जो कर्म बांधा था, वह अभी भी थोड़ा बाकी था। उसके कारण से सौधर्म देवलोक में इन्द्र की पट्टानी = स्त्री बनी, और अंतिम भव में ब्राह्मणी बनी = स्त्री बनी..."

समवसरण में बैठे हुए करोड़ो नरनारी-देवदेवी-पशु ये घटना सुनकर वैराग्य से भावित हो गये... सभी के मन में भाव प्रगटने लगे कि "मुझे मेरे छोटे से छोटे यारों की भी शुद्धतम आलोचना लेनी है। मुझे लेश भी माया करनी नहीं है। मुझे इस ऋक्षिणी की तरह भवभ्रमण करना नहीं है। अगर उसने माया नहीं की होती, तो शीलक्रष्णि का पूरा का पूरा परिवार (शिष्य-शिष्या) मोक्ष में गया था, ऐसे वह खुद भी मोक्ष में ही जाती... परंतु एक ही छोटी भूल, और १ लाख भव का संसार बढ़ गया।"

पूछते हैं गौतमस्वामी, "प्रभु! जो आत्माएँ साधुजीवन का पालन करती हैं, वो तो जग्न्य से एक और उत्कृष्ट से सात-आठ भव में ही मोक्ष में जाती हैं... यह नियम है, तो किर ये १ लाख भव किस तरह हुए? ऋक्षिणी ने चारित्र तो पाला ही था ना?"

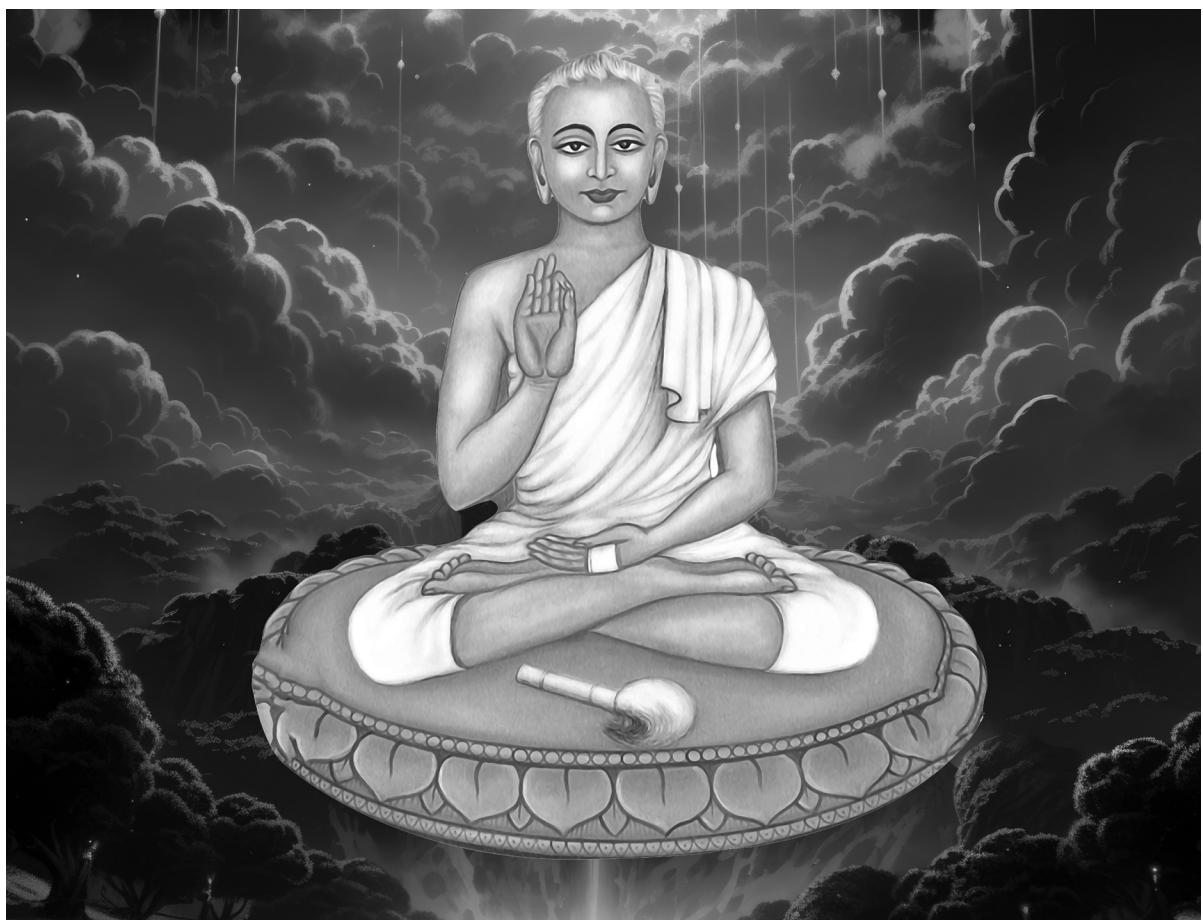
वीर : गौतम! यह नियम निरतिचार चारित्र के लिए है। यानि कि जो आत्मा छटा गुणस्थान प्राप्त करे, और चाहे संज्वलन के उदय से अतिचार लगे, परंतु वह छटा गुणस्थान छो कर पांचवें-चौथे-पहले पर नहीं जाये, उनके लिए सात-आठ भव में मोक्ष जाने की बात है।

अरे! वे नीचे गिर जाये, किर भी अगर वापस यश्चात्ताप, आलोचना आदि के द्वारा वापस ऊपर चढ़ जाये, तो उन्हें भी सात-आठ भव में मोक्ष होता है।

परंतु ऋक्षिणी ने तो अनंतानुबंधी माया की थी, मिथ्यात्व में जाकर गिरी और वहाँ ही मर गई, आलोचनादि के द्वारा वापस छटा प्राप्त किया नहीं,

इसलिए उसके १ लाख भव भी हो सकते हैं । (ऐसे देखे तो ऋक्विमणी पहला भव + आचार्यदिव १ लाखवां भव, किर सौधर्म की पट्टानी + ब्राह्मणीभव ऐसे कुल १ लाख + २ भव हुए ।)

गौतम ! वायस ध्यान से सुन ले । जो जीव छोटी या बड़ी माया करता है, सचित पानी का उपयोग करता है, अश्विकाय का उपयोग करता है, और इस तरह साधुजीवन का नाश करता है, वह सच में तो अनंत संसार भटक सकता है, और वह अगर एक लाख भव में ही मोक्ष प्राप्त कर ले, तो वह तो उसके लिये बहुत बड़ा फायदा है “शूलीं कीं सजा सूईं में खत्म...” ऐसा कहा जाता है । साधुपणा का माया आदि के द्वारा विनाश करने के बाद तो भवोभव तक सम्यक्त्व की प्राप्ति भी दुर्लभ है...



गौतम : गोविंदपत्नी ने और गोविंद आदि सभी ने दीक्षा ले ली, और सभी मोक्ष में गये, यह बात तो आपने कर दी। परंतु उस सूर्यश्री का क्या हुआ? और उस चावल मांगनेवाली ग्वालिन का क्या हुआ? क्या उस ग्वालिन ने भी सभी के साथ दीक्षा ली? और कर्मों का क्षय करके मोक्ष में गई?

वीर : गौतम! सभी की आत्मा इतनी उत्तम नहीं होती। सूर्यश्री, ग्वालिन और दूसरे भी थोड़े जीव वचनामृत की बरसात बरसने के बावजूद भी एकदम सूखे ही रहे। इतना सब नजारों से देखने के बावजूद भी और इतना ज्यादा वैराग्य का उपदेश सुनने के बावजूद भी उस ग्वालिन को तो एक ही बात की चिंता है “मुझे मेरे चावल कब मिले, और मैं कब मेरे गोकुल में पहुंच जाऊं...”

परंतु वहाँ के माहोल में अब वह चावल मांगे, वह उसे बिल्कुल भी शक्य नहीं लगा, फिर भी चावल की स्पृहा छोड़ भी नहीं सकी, परंतु मन मारकर भी उसे चावल की इच्छा छोड़नी पड़ी। वहाँ उसने देखा कि “सूर्यश्री को तो वैराग्य हुआ नहीं है, वह दीक्षा नहीं ले रही थी, वह तो वहाँ से दूसरी जगह जाने की तैयारी में थी।” ग्वालिन को हुआ “यह सूर्यश्री तो ब्राह्मणी की बेटी की तरह रही हुई नौकरानी है। वह अब अकेली हो गई है। तो मैं उसे मेरे वहाँ लेकर जाऊं।”

इसलिए उसने शस्ते में ही उसे पकड़ लिया, और यहले तो धमकाया कि “मेरा दूध-घी खाकर तू अभी कहाँ भाग रही है?”

बिचारी उसने तो कुछ खाया ही नहीं था, परंतु गुलाम की तरह जी रही थी, इसलिए दबकर, डटकर रहने का उसका स्वभाव बन गया था।

“चल, अब तेरा मालिक नहीं है, तो मेरे साथ गोकुल में चल। मेरे चावल तूने मुझे दिये नहीं है, इसलिए तुझे बदले में मेरा गुलाम बनना पड़ेगा।” वह एकदम स्तब्ध हो गई।

डर के साथ लालच भी दी ग्वालिन ने... “अगर, तू मेरी सब बात मानेगी, मेरे सब काम करेगी, तो मैं तुझे तेरी इच्छा के अनुसार रोज तीनों समय बहुत गुड़-घी-दूध आदि खाने-पीने को ढूँगी...।”

एक तरफ डर! “मैंने इसे चावल नहीं दिये, इसलिए मैं अपशंधी!” ऐसी गलत बात भी सच्ची मान ली और दूसरी तरफ लालच मिली...

इसलिये सूर्यश्री ग्वालिन के साथ गोकुल में चली गई। ऐसे भी बिचारी

अनाथ बन गई थी, कोई सहारा भी उसे चाहिए ही था ।

जन्म होते ही माता की मृत्यु !

यौवन में पैर इखे उसके पहले सगे पिता ने उसे बेच दी !...

मालिक-मालिक काम करवाकर संभालनेवाले थे, उन्होंने ने भी दीक्षा ले ली और चले गये... अनाथ किसी का सहारा तो ढूँढ़ेगी ही ना !

सूर्यश्री की याद भी नहीं आई । अरे, खुद के सगे बेटे को भी भूल गये, तो पराई गुलाम लड़की की तो क्या चिंता करेगे ?

गोकुल में ग्वालिन रोज खुद के वचन के अनुसार सूर्यश्री को बराबर खाने का देकर उसकी संभाल रखने लगी ।

दूसरे चार साल व्यतीत हो गये, और वह भयानक दुष्काल पूरा हुआ । धीरे-धीरे वापस सभी लोग धन-धान्य से समृद्ध बन गये । बारीश हुई, अनाज उगा तो समृद्धि तो बढ़ेगी ही !

परंतु गौतम ! सूर्यश्री के जीवन में एक बड़ा कड़वा मोड़ आना बाकी था ।

उसके सगे पिता देश के बाहर गये थे । वहाँ लड़कियों का अपहरण करके, उन्हें बेचकर बहुत धन कमाया था, उससे २० अमूल्य रत्न खरीदकर वे स्वदेश की तरफ वापस घुमे थे । लंबी मुसाफरी के कारण से वे बहुत थक गये थे । वे खुद के गांव में पहुंचे उसके पहले शास्ते में ही वह गोकुल देखा । वहाँ आराम करने के लिए लक गये ।

यह एक भयानक भवितव्यता थी...

उसने वहाँ सूर्यश्री को देखा, अब वह संपूर्ण यौवन पा चूकी थी... और बचपन का अंत और युवानी का आरंभ यह बदलती उम्र ऐसी है कि शरीर का गठन, चेहरा आदि भी बदल जाता है... पिता-बेटी को परस्पर देखकर ६-७ साल का अंतर भी हो गया था । पिता ने जब उसे बेचा था, तब उसकी उम्र १२-१३ की होगी, और सभी १८ के आसपास थी । दुष्काल के आठ साल निकल गये थे । गरीब घर की ओर दुष्काल के बर्बों में कम-कम खाने का मिला होगा उस समय सूर्यश्री का रूप सामान्य होगा, यह संभवित है । उसके बाद पिछले चार साल में तो गोकुल में अच्छा खाना मिला और सुकाल होने के बाद भी कुछ महीने बीते ही होगे, इसलिए धी-दूध-दही यह सब खाने के कारण से उसका रूप अब

तो बहुत ज्यादा निखर गया था कि सूर्यशिव पहचान ही नहीं थका कि “यह मेरी पुत्री सूर्यश्री है ।”

और उसने तो गोविंद को वहाँ बेटी को बेचा था, इसलिए दूसरी कोई कल्पना भी मन में कहाँ से आये कि “मेरी बेटी इस गोकुल में हो सकती है ।”

सूर्यशिव ने सुंदर, युवान खुद की सगी बेटी को देखा और महापापी सूर्यशिव कामविकारो से ग्रस्त बन गया ।

सच में इन्द्रियाँ चंचल हैं...

विषय अनंतदुःख देनेवाले हैं, जहरीले मठी कल की तरह तिर्फ प्रारंभ में मठी लगनेवाले हैं...

सूर्यशिव पाप-पुण्य में विशेष कुछ जानता नहीं था । हाँ ! सगी बेटी का भोग तो नहीं किया जाता, इतना ध्यान उसे था, परंतु “यह मेरी सगी बेटी, यह ध्यान कहाँ था ?” महापापी सूर्यशिवने सूर्यश्री के पास प्रस्ताव रख दिया...

“प्रिये ! मैं तेरे साथ शादी करना चाहता हूं और दूसरी बात तेरे पूरे परिवार को समृद्ध बना दूँगा ।”

“तेरे लिये भी १० पल सोने के जवाहरत बनवाकर दूँगा ।”

“जा, तेरे माता-पिता को जल्दी यह बात कर...”

सूर्यशिव का अनुभव था “वैसे से सब काम हो सकते हैं...”

(प्रश्न यह होता है कि “क्या उसने नाम पूछा नहीं होगा ? सूर्यश्री नाम सुनकर उसे शंका नहीं हुई होगी ? परंतु ऐसा हो सकता है कि “ग्वालिन ने उसका नाम बदल दिया हो...” अथवा ऐसा भी हो सकता है कि उस जमाने में नाम पूछना आदि नहीं होता हो । तत्त्वं केवलिगम्यम् ।)

बिचारी सूर्यश्री !

वह तो खुश-खुश हो गई, “मुझे कोई प्रेम करे, कोई मेरा पति बन जाये ।” यह तो अनाथ बदनसीब के लिये तो बड़ी बात थी । उसमें भी लालच तो बहुत बड़ी थी । आज की लड़कियाँ ऐसी सभी बातों में फंसती ही है ना !

“मा-मा ! वह परदेशी मुझसे शादी करना चाहता है, आपको बहुत धन देने का कह रहा है, और मुझे भी १० पल गहने बनवाकर देगा ।” भागकर घर में जाकर सूर्यश्रीने ग्वालिन को बात की ।

पिछ्ले चार सालों में ग्वालिन को भी सूर्यश्री के साथ बेटी जैसी ही ममता बंध गई थी, वह भी खुश हो गई, परंतु वह किसी की गलत बात में फ़ंसना नहीं चाहती थी। वह बराबर सब तलाश करके ही बेटी की शादी करना चाहती थी।

“देख परदेशी ! तू मेरी बेटी से शादी करना चाहता है और तू १० यल गहने बनवाकर देगा ऐसा कह रहा है, तो पहले तू दिखा, तेरे पास सुवर्ण है ? या सिर्फ बाते हैं...” ग्वालिन ने सूर्यशिव को स्पष्ट भाषा में पूछ लिया।

सूर्यशिव ने उन उत्तम मणियों को दिखाया।

ग्वालिन बिचारी-अनपढ़। ज्यादा से ज्यादा सोने को पहचानती है। इस सुवर्ण से भी ज्यादा किमती मणि है उसे यह कैसे समझ में आता। उसने तो मुँह पर चिपका दिया “ये तो बच्चों के खेलने के पांच कंकड़ लग रहे हैं। मुझे इससे कुछ काम नहीं है। तुम मुझे १० यल सोना दिखाओ।”

सूर्यशिव ने कहा, “मुसाकरी में ज्यादा धन उठाकर लाना कठिन है, खतरा भी बहुत है। इसलिए वह धन देकर ये अतिमंहगे रत्न ले लिये थे। विश्वास नहीं आता हो तो, तो कल मेरे साथ नगर में आना, तुझे रत्नों का महात्म्य बताऊंगा।”

सुबह सूर्यशिव और ग्वालिन नगर में गये, वहाँ राजा को मुख्य दो रत्न दिखाए “सूर्यकांतमणि और चंद्रकांतमणि !”

राजा ने रत्नपरीक्षकों को बुलाया। उन्हें कहा कि “इन रत्नों की परीक्षा करो, और किमत बताओ।”

परीक्षकों ने परीक्षा करके बताया कि “इसका क्या मूल्य होगा ? वह नक्षी करना हमारे लिये शक्य नहीं है। अतिमूल्यवान है ये रत्न !”

राजा खुश हो गया। उसने सूर्यशिव को कहा “रत्न के मालिक ! यहाँ ऐसे कोई इंसान नहीं है, जो तेरे रत्नों की किमत कर सके, तो तू एक काम कर, इसके दस करोड़ द्रम्म ले ले। और ये दो रत्न मुझे दे।”

विस्मित हो गई ग्वालिन ! सूर्यशिव मुस्कुरा उठा। उसे वह लड़की खुद की पत्नी बन ही गई ऐसा लगने लगा। उसने राजा को कहा, “महाराजा ! आपने मेरे उपर बड़ी कृपा की। बस एक कृपा ज्यादा करेंगे। इस नजदीक के पर्वत के पास हमारा गोकुल है। वहाँ एक योजन जितनी भूमि हमारी गायों को चरने के लिये दी जाये, और हमारे गोकुल को करमुक्त किया जाये... तो ज्यादा

कृपा होगी...” राजा ने तुरंत उस बात को मंजुर इखा और ग्वालिन का भी काम हो गया ।

ग्वालिन सब तरह से खुश हो गई और ग्वालिन ने खुद की बेटी के समान सूर्यश्री की शादी परदेशी के साथ करवा दी । बिचारा सूर्यशिव ! मन में आनंदित हो रहा है, परंतु बिचारे को पता ही नहीं है कि वह खुद की सग्गी बेटी का ही पति बना है । उस महापापी का तो नाम लेने में भी पाप लगता है...

दोनों के बीच प्रेम गहरा बनता गया । एक-दूसरे के साथ संसारसुख भोगते-भोगते इन्हें शग के ढूढ़ बंधन से भी बंध गये । सूर्यश्री अपनेआप को धन्य मानने लगी... अज्ञान सभी के लिये अभी तो आशीर्वाद रूप था ।

एक दिन की बात...

सूर्यश्री के घर दो मुनि गोचरी वहोरने के लिए आये । सूर्यश्री ने उनको पहचान लिया । उसने खुद की वेदना को दबाकर गोचरी तो वहोरा दी और जैसे ही दो मुनि घर में से निकल गये कि तुरंत सूर्यश्री जोर-जोर से रोने लगी...

सूर्यशिव चिंता में पड़ गया... उसने सूर्यश्री को मुश्किल से शांत किया और पूछा कि “तू इन साधुओं को देखकर इतना क्यों रो रही है ? तूने तो उन्हें पहलीबार देखा है ।”

रोते-राते सूर्यश्री ने कहा, “स्वामिन् ! पहले मैं एक घर में गुलाम थी । उस घर में मेरी जो सेठानी थी, वह साधुओं को भोजन-पानी वहोराकर उनके पात्रे भर देती थी और किर अंतर से खुश होकर उनके चरणों को प्रणाम करती थी ।

ऐसा मैंने अनेकबार देखा था । आज साधु मेरे घर आए, तो मुझे मेरी सेठानी याद आ गई । बहुत अच्छी थी वह, उसने दीक्षा ले ली, उसके बाद मेरे गोकुल में रहने लगी... यह ग्वालिन मेरी सग्गी माता नहीं है, वह तो पालकमाता है ।”

सूर्यशिव ने जिज्ञासा से पूछा “तो तेरे माता-पिता कौन ? तेरी स्वामिनी का नाम क्या ?”

सूर्यश्री का अभी का जवाब सूर्यशिव को भयानक आघात देनेवाला बननेवाला था । “मेरे जन्म के समय ही मेरी माता मर गई, मैंने उन्हें तो देखा

ही नहीं है । मेरे पिता ने बचपन में ही मुझे गोविंद ब्राह्मण के वहाँ बेच दिया और कहीं चले गये । यह गोविंद ब्राह्मण की पत्नी ही मेरी स्वामिनी... और..."

"नहीं, नहीं, नहीं... ऐसा नहीं हो सकता है ।" जोर से चीख उठे सूर्यशिव ! परंतु वह सब समझ गया कि जिसे मैं अनेकबार पत्नी रूप से भोग चूका हूँ, जिसने मेरी वासना को संतोष दिया है, वह तो मेरी बचपन की छोटी प्यारी लड़की सूर्यश्री ही है... और वह जब छोटी थी, तब उसका रूप ऐसा ही था, आज उसका जो अप्रतिम रूप है, वह प्यारी सूर्यश्री का ही हो सकता है ।" आहटे भर-भरकर रोने लगा सूर्यशिव ।

"मैंने ऐसा पाप किया, तो भी वज्र मेरे पर क्यों नहीं गिरा ? लगता है कि "उस वज्र को भी पता चल गया कि उसके गिरने से और मेरे मरने से भी मेरी शुद्धि नहीं होगी ।"

"मेरे पापों के प्रायश्चित्त के लिये मैं क्या करूँ ? मेरे हाथ से ही मेरे पूरे शरीर के तिल जितने टुकड़े कर दूँ ? या फिर यर्वत के ऊंचे शिखर पर से नीचे छलांग मारकर मेरे शरीर के टुकड़े कर दूँ ? या फिर अच्छी तरह तपाये हुए लोहे के टुकड़े को जैसे घन का प्रहार चूर-चूर कर देता है, वैसे उस घन के प्रहार को मेरे शरीर पर मरवाकर मेरे शरीर का चूर्ण बना दूँ ? या फिर तीक्ष्ण तलवार के द्वारा शरीर के दो भाग करवाकर उस भाग के अंदर गर्म किया हुआ पारा-तांबा-कांसा-लोहा-नमक-ओस-खारा भरवा दूँ... (जैसे खड़ी भिंडी के अंदर मसाला भरने में आता है ?) या फिर मेरे हाथ से मेरे मस्तक का छेदन कर दूँ... ? या फिर समुद्र में प्रवेश करके मगरमच्छों को मेरा शरीर खाने के लिए दे दूँ ? या फिर दो वृक्षों के बीच मेरे शरीर को उल्टा बंधवाकर, मस्तक नीचे की तरफ रखवाकर नीचे आग प्रगटाकर मेरे मस्तक को जलाऊँ ? या फिर चिता में प्रवेश करके अपने आप को जला दूँ ?"

आत्महत्या के बहुत विचार करने के बाद उसने अंतिम उपाय नक्षी किया ।

गया स्मशानभूमि में । और गौतम ! बड़ी चिता की रचना की । बहुत लोग वहाँ डकड़े हो गये, पूछे लगे "ए ! किस लिए जानबूझकर जलकर मर रहा है ?"

सूर्यशिव जोर-जोर से बोलने लगा, “ये मेरी पत्नी ही मेरी सग्गी बेटी है। मैंने मेरी सग्गी बेटी को अनेकबार भोगा है। अब मुझे यह पता चला है, मुझे अभी नहीं जीना है।”

और वह चिता पर चढ़ गया।

परंतु भवितव्यता भी अजीब है।

उन लकड़ों में ऐसा कुछ द्रव्य मिथित हो गया था कि जिसके कारण से बहुत मेहनत करने के बावजूद भी लकड़े जले नहीं।

अज्ञानी लोगों ने उसका पश्चात्ताप नहीं देखा, परंतु उसके पापों को ही देखा।

सभी ने उस पर धिक्कार बरसाया। सभी बोले “देखो, देखो! यह कैसा महापापी है कि अग्नि भी उसे जलाने के लिये तैयार नहीं है। अग्नि उसके स्वर्ण से अपवित्र बन जाने के कारण डरती है, इसलिये प्रगटती नहीं है।”

लोगों के मुँह पर कहाँ ताला लगाया जाता है?

सभी ने दोनों पिता-बेटी को, पति-पत्नी को मार-मारकर गोकुल में से बाहर निकाल दिया।

गोकुल के बाहर दोनों लोग दोष और दुःख से ग्रस्त बनकर अभी खड़े थे। “क्या करना?” उसका विचार कर रहे थे, वहाँ ही नजदीक के किसी छोटे गांव में से गोचरी लेकर उद्यान की तरफ जाते हुए दो मुनिवरों को उन्होंने देखा। दोनों उन दो मुनियों के पीछे-पीछे चलने लगे। उन्हें जलूरत थी किसी के आश्वासन की, किसी के शरण की, किसी की गंभीरता की...

दो मुनियों के पीछे-पीछे दोनों उद्यान में पहुँचे। वहाँ उन्होंने जगानंद नाम के मुनिवर को देखा।

👑 वे सभी गुणों के धारक थे,

👑 वे चार ज्ञान के धारक थे,

👑 वे बहुत शिष्यों से युक्त थे,

👑 इन्द्र व राजा उनके चरणकमल में वंदन करते थे,

👑 उनका नाम बहुत भाव से लेने जैसा था...

दोनों सूर्यशिव-सूर्यश्री ने सोचा कि “हम उनके पास अपने पाप की शुद्धि मांगते

है। ये महायशस्वी है, अवश्य हमें शुद्धि मिलेगी।”

दोनों प्रणाम करके वहाँ बैठे। उस मुनिवर के आगे उचित भूमि पर खुद की जगह धारण की।

सूर्यशिव को सामने से ही जगानंदमुनि ने कहा “भाग्यशाली! शुद्धभाव से आलोचना कर लो, और बाद में सभी पापकर्मों का नाश करनेवाला प्रायश्चित्त भी जल्दी कर लो। यह तेरी पत्नी गर्भवती है, इसलिए अभी उसके लिए प्रायश्चित्त शक्य नहीं है। संतान को जन्म दे दे, फिर वह प्रायश्चित्त कर सकेगी।”

गौतम! सूर्यशीव यह सुनकर अत्यंत प्रसन्न हो गया। संवेगभाव बढ़ने लगा उसके हृदय में। उसने जन्म से लेकर अभी तक के सभी पापों की शुद्धभाव से आलोचना कर ली।

जगानंद मुनि ने उसे प्रायश्चित्त दिया। सूर्यशिव ने वह अत्यंत दुष्कर घोर प्रायश्चित्त भी कर लिया और उसके परिणाम इतने ज्यादा विशुद्ध बने कि उसने दीक्षा का स्वीकार किया। और गौतम! २६ साल १३ दिन घोर तप-संयम पालकर, एक-दो-तीन-चार-पांच-छः महीने के उपवास करके, बहुत सारे कर्मों को खपाया, शरीर की संभाल छोड़ दी, अप्रमत्ता के साथ साधुजीवन बिताया। खुद की पूरी शक्ति लगाकर स्वाध्याय-ध्यान आदि में जुड़े और कर्मों का क्षय कर अपूर्वकरण के द्वारा क्षयकश्रेणी, केवलज्ञान पाया, अंतकृत केवली बन गये और सिद्ध भी बन गये।

महापापी सूर्यशिव उस ही भव में सिद्ध भगवान बने।

गौतम : लड़कियों का अपहरण करके बेचनेवाला, खुद की सगड़ी बेटी को काटकर खा जाने का विचार करनेवाला, सगड़ी बेटी को बेचनेवाला, सगड़ी बेटी के साथ शादी करके भोग भोगनेवाला महापापी सूर्यशिव उस ही भव में मोक्ष किस तरह जा सकता है?

वीर : सुन गौतम!

👑 जिस प्रकार के भाव में रहकर उसने आलोचना की,

👑 जिस प्रकार के संवेग से उसने घोर प्रायश्चित्त वहन किया,

👑 सुविशुद्ध शुभ अध्यवसायों के द्वारा घोर तप-संयम क्रिया में प्रवृत्ति करते हुए, मूलगुण और उत्तरणों में लेश भी अतिचार नहीं लगाते हुए

उसने जैसे निरतिचार चारित्र का पालन किया ।

॥ आर्त-शैद्रध्यान का त्याग करके, शग-द्वेष-मिथ्यात्व-मद-भय-गारव का त्याग करके माध्यस्थ्यभाव से, मन की दीनता के बिना जिस तरह उन्होंने बारह साल संलेखना और अंत में पादपोषगमन अनशन किया ।

॥ गौतम ! उस प्रकार के भाव के द्वारा तो सिर्फ वह अकेला ही सिद्ध नहीं होता, परंतु अगर दूसरों के भावों से बाकी के जीवों के कर्म खपते होते, तो सभी के सभी संसारी जीवों के सर्व कर्मों का नाश हो ही जाता और सभी मोक्ष में पहुँच जाते, इतनी प्रचंड ताकत उसके भावों में थी ।

॥ परंतु किसी के भावों से दूसरों के कर्मों का नाश होता नहीं है, इसलिए वह उसके भावों से अकेला ही मोक्ष में गया, सर्व जीव मोक्ष में नहीं गये ।

जब आत्मा सर्वयोगों का निरोध कर लेती है, तब उसके मिथ्यात्व-अविरति-कषाय-योग ये चारों ही आश्रवद्वार बंध हो जाते हैं । अब कर्म का बंध लेश भी नहीं होता और अल्पकाल में ही वह अयोगी महात्मा सभी कर्मों का क्षय कर लेता है ।

गौतम ! योगनिरोध से ही सर्वकर्मक्षय है । सिर्फ काल व्यतीत होने से सर्वकर्मक्षय नहीं होता । क्योंकि उसमें तो कर्म को खपाता भी जाता है और बांधता भी जाता है...

- जिस काल में कर्म को खपाता है, उस ही काल में कर्म को बांधता है । एक कर्म को बांधता है, एक को खपाता है, गौतम ! इस तरह अनंतकाल हुआ ।

- योग का निरोध हो जाये, किर चौदहवें गुणस्थान पर कर्मों को सिर्फ वेदता है, नया बांधता नहीं है । इस तरह पुराने कर्म खाली होते हैं, और नये कर्मों का तो अभाव ही है ।

- इस अनुसार कर्मों का क्षय जान । इसमें तू “काल ने कर्मों का क्षय किया ।” ऐसा मत कहना, क्योंकि काल तो अनादि बीत गया है । जीव भी अनादिकाल से है ही, तो भी अभी तक कर्मक्षय हुआ नहीं है । अगर काल से कर्म खत्म होते, तो अनादिकाल ने सर्वजीवों के कर्मों को खत्म ही कर दिया होता

ना ?

- कर्मों के क्षयोपशम से जब जीव का वीर्य उल्लास पाता है, तब काल, क्षेत्र, भाव, भव और द्रव्य को पाकर वह वीर्य उल्लास पाता है ।

- तब वह जीव अप्रमादी बनता है, और कर्म को खपाता है । यह वह ही जीव करता है, जो वैशी ऊँची कोटि पर चढ़ा हुआ हो । जो जीव प्रमादी बनता है, वह तो वायस अनंतकाल तक कर्म को बांधता है और अत्यंत दुःखों से भरपूर चारों गति में अनंतकाल रहता है ।

- इसलिए बुद्धिमान जीव (द्रव्य) क्षेत्र, काल, भाव, भव को पाकर जल्दी ही कर्मक्षय करता है ।



गौतम : प्रभु ! उस सूर्यश्री का क्या हुआ ? वह मरकर कहाँ उत्पन्न हुई ?

वीर : गौतम ! वह छट्ठी नरक में उत्पन्न हुई ।

गौतम : किसलिये ? प्रभु ! वह भी जगानंद मुनि के पास अच्छे भाव से ही आई थी ना...

वीर : अच्छे भाव हमें शा के लिये टिकते नहीं हैं । वह गर्भवती बन गई थी । इसलिए उस समय तो प्रायश्चित्त, दीक्षा उसके लिये तो शक्य नहीं थे ।

उसे समय व्यतीत करना ही था । साधिक नौ महीने पूर्ण हुए, और नौ महीनों के बाद में उसे विचार आया कि “कल सुबह गर्भपात करवा दूँगी । मुझे इस बालक को जिंदा नहीं रखना है...”

गौतम ! सूर्यशिव ने तो दीक्षा ली थी । नौ महीने उसने अकेले ही व्यतीत किये, इसलिए उसमें बहुत सारी मुश्किलीयों का सामना करना पड़ा । वह ऊब गई थी, दुःखी हो गई थी, इसलिए नक्षी किया कि “मैं अपने आप को भी नहीं संभाल सकती, तो इस बालक को किस तरह संभालुँगी ?”

और उसने नौ महीने के बाद गर्भपात का विचार किया ।

जबकि उस विचारी को पता नहीं था कि नौ महीने के बाद गर्भपात करवाना शक्य नहीं होता है...

वह ऐसे गर्भहृत्या के विचारों में थी और वहाँ ही प्रसूति की वेदना शुरू हुई, और बालक का जन्म हो गया । उस समय स्वयं मर गई और मरकर छट्ठी नरक में उत्पन्न हुई ।

दूसरों को मार डलने का विचार करनेवाले खुद ही भवोभव मरते हैं, उसका यह अचूक उदाहरण ! वह गर्भहृत्या के रौद्रध्यान में थी, और ऐसे रौद्रध्यान में नरक गति ही होती है ना !

गौतम : भगवंत ! सूर्यश्री जिस बालक को जन्म देकर मर गई, वह बालक जिंदा रहा या मर गया ?

वीर : गौतम ! वह जिंदा रहा, उसका जन्म हुआ और माता मर गई । उसका शरीर पूरा अशुचि से व्याप्त था । खून-आदि सब अभी भी उस बालक पर लगा हुआ था, वह बालक जोर-जोर से रो रहा था, एक कुत्ते ने उसे देखा, और

खुद के दांत से उठाकर कुंभार के चक्र पर रथा और उस बालक को खाने लगा ।

परंतु बालक का पुण्य अच्छा था कि कुंभार ने यह दृश्य देख लिया । कुंभार उस कुत्ते को मारने के लिए दौड़ा । कुत्ता कुंभार को भागते हुए देखकर खुद ही भाग गया । उस बालक को शरीर पर थोड़ी भी पीड़ा नहीं हुई ।

कुंभार के हृदय में उस बालक को देखकर करुणा उत्पन्न हुई । उसे एक भी संतान नहीं थी, इसलिए उसने उस बालक को खुद की पत्नी को लौप्य दिया, “ले, भगवान ने अपनी प्रार्थना सुनकर भेट रुप में यह बालक दिया है ।” उसने सहज रूप से उसे अपना लिया - स्वीकार कर लिया और लालन-पालन करके बड़ा किया । कुंभार ने लोगों के कहने से उस बालक का नाम खुद के पिता के नाम से रथा “सुसढ !”

गौतम ! काल व्यतीत होने लगा । और एकबार सुसढ को सुसाधुओं का संपर्क हुआ, उनकी देशना सुनने मिली, सुसढ प्रतिबोधित हुआ, माता-पिता की आज्ञा लेकर उसने दीक्षा ली ।

गौतम ! सुसढ जिनवर्चनों पर परमश्रद्धावाला था, संसार के प्रति वैराग्यवाला था, मोक्ष की झाँखनावाला था, इसलिए ही अतिघोर और अत्यंत दुष्कर ऐसा तपादि कष्ट करता है, परंतु उसमें विवेक कम है, इसलिये वह संयम की जयणा नहीं करता । उसे यह ध्यान नहीं रहा कि “सिर्फ शरीर को कष्ट देने से नहीं चलता, मुझे बट्काय की जयणा बराबर पालनी है । मेरे निमित्त से कोई भी जीव नहीं मर जाये, उसका मुझे ध्यान रखना है ।”

अजयणा के कारण से उसे सभी असंयम स्थानों में दोष लगने लगे ।

संविघ्नीतार्थ गुरु यह सब देखकर बोले, “सुसढ ! सात्त्विक पुरुष ! तुझ में अविवेक है, अज्ञान है । तू संयम की जयणा को नहीं जानता, और बहुत कायकलेश = कायकष्ट करता है । परंतु अब अगर इन सभी अजयणा की आलोचना कर लेगा और प्रायश्चित्त कर लेगा, तो यह सब सफल होगा, नहीं तो निष्फल जायेगा । और उसे करने के बाद संयम में जयणा पालन शुरू कर दे...”

गुरु ने उसे प्रेरणा की, इसलिए उसने गुरु के पास संयम की अजयणा की आलोचना तो कर ली, गुरु ने भी प्रायश्चित्त दिया कि “तू बराबर संयम जयणा का पालन कर, वह ही तेरा मुख्य प्रायश्चित्त है । तुझे संयम की जयणा लेश भी छोड़नी

नहीं है। इस तरह तू शुभध्यान में रहे और दुर्ध्यान का त्याग करके जी... ”

परंतु सुसद्मुनि इस बाबत में गड़बड़ कर बैठे।

गौतम !

सुगुरु ने दो प्रकार के प्रायश्चित्त दिये थे,

(१) २-३-४-५-१५-३०-१८० उपवास का प्रायश्चित्त भी दिया था।

वह अत्यंत दृष्टकर था। सुसद ने प्रायश्चित्त तहत करके स्वीकार लिया, और उसका आचरण भी किया। उसे ऐसा था कि ये तप करने से मेरे सभी पाप धुल जाएंगे...

(२) उसे दूसरा प्रायश्चित्त देने में आया था कि “संयमक्रियाओं में एकांत से जयणा का पालन करना, मन-वचन-काया के योग से जयणा पालना। सभी आश्रवों का निरोध करना। स्वाध्याय-ध्यान-आवश्यक विधिपूर्वक करना...” सभी पापों का नाश करनेवाला यह प्रायश्चित्त भी उसे देने में आया था।

उन्होंने इस दूसरे प्रायश्चित्त में प्रमाद किया, उसका अपमान किया, उसकी हीलना की, उस पर श्रद्धा नहीं की। वे प्रायश्चित्त में शिथिल बन गये।

“इसमें क्या बड़ी बात है। ऐसा कोई प्रायश्चित्त होता होगा ?” इसतरह सोचकर उसका विधिसर सेवन नहीं किया।

यह गंभीर भूल सुसद कर बैठा।

घोर तपस्वी बन गये,

परंतु संयमजयणा के पालक नहीं बने।

गुरु के बाख्बार के उपदेश भी निष्फल गये, अंत में गुरु ने भी उपेक्षा की।

सुसद मुनि का आयुष्य पूर्ण हुआ और मरकर सौधर्मकल्प देवलोक में इन्द्र के महर्षिक सामानिक देव की तरह उत्पन्न हुए, घोर तप का इतना फल तो मिल गया। वहाँ से च्यवन हुआ और मनुष्य बने। वासुदेव बने और मरकर सातवीं नारक में उत्पन्न हुए। संयमजयणा की उपेक्षा करने का यह परंपरा से फल था, वहाँ से मरकर अनंत-वनस्पति में = निगोद में गये...

गौतम ! सुसद ने आलोचना की, निंदा की, गर्हा की, तपश्चर्पी प्रायश्चित्त भी किया, परंतु जयणा का पालन नहीं किया, इसलिए दीर्घ-अतिदीर्घ काल संसार में भटकेंगे।

गौतम : सुसङ्घमुनि ने कौनसी जयणा को पाला नहीं था ? जिसके कारण से घोर तप करने के बावजूद भी वे दीर्घ संसार में भटके...

वीर : गौतम ! अठारह हजार शीलांग हैं। उसकी छंडना नहीं होनी चाहिए, उसकी विराधना नहीं होनी चाहिए, पूरी जिंदगी लगातार इन १८००० शीलांगों को धारण करना चाहिए। ये ही हैं संयमक्रिया ! सुसङ्घ इसे तो जानता ही नहीं था, मानता ही नहीं था। बस, उसे तो तप ही महान लगा। इसलिए वह लंबे समय तक संसार में भटका।

गौतम : उसने कायक्लेश = तप करने में जितनी मेहनत की, उसके आठवें भाग जितनी मेहनत भी अगर उसने बाह्यपानक (सचित्तजल-दोषितजल) का त्याग करने में की होती, तो वह मोक्ष में ही चला जाता, परंतु उसने बाह्यपानक का उपयोग किया। और गौतम ! बाह्य पानक का उपयोग करनेवाले का घोर तप भी निष्कल जाता है।

क्योंकि गौतम ! जल-अग्नि-मैथुन ये तीनों बड़े पापस्थान हैं। वे मिथ्यात्व के दायक हैं। इन्हें एकांत से छोड़ देना चाहिए। सुखंयत को उसका लेश भी आचरण नहीं करना चाहिए। परंतु उसने बाह्यजल का उपयोग किया, इसलिए वह दीर्घसंसार भटका।

गौतम : इन तीन वस्तु को मिथ्यात्वदायक क्यों बताई है ?

वीर : गौतम ! ऐसे तो छः काय में से किसी भी काय की हिंसा महापाप है। परंतु अग्नि, जल की हिंसा अनंतजीवों की हिंसा है और मैथुन के आसेवन करने में संख्याता-असंख्याता जीवों का नाश है। उसमें गहरे शग-द्वेष परिणाम होते हैं। उसमें एकांत से अशुभ अध्यवसाय होते हैं।

गौतम ! इस ही कारण से जो साधु इन तीन का उपयोग करते हैं, सेवन करते हैं, वे प्रथम महाव्रत का भंग ही करते हैं और प्रथम महाव्रत नहीं हो, तो बाकी के चार महाव्रतों का अभाव ही है। संयमानुष्ठान का अभाव ही है।

और इन सभी का अभाव यानि संयम की विराधना ही गिनी जाती है।

इस तरह वह आत्मा सन्मार्ग का नाश प्रवर्तनिवाली बनती है और ऐसा कोई कर्म बांध लेती है कि जिसके कारण नारेक-तिर्यच और कुमानव भवों में अनंतीबार बार-बार भटकती है और वहाँ इवज्ञ में भी उसे धर्म यह अक्षर भी सुनने, देखने नहीं मिलता।

गौतम ! अब तुझे इयाल आ गया होगा कि जल-अश्वि-मैथुन अबोधि के = मिथ्यात्व के दायक क्यों है ?

जलादि का सेवन, यानि प्रथमव्रत भंग, यानि सर्वव्रतभंग, यानि संयम नाश, यानि सन्मार्गनाश, यानि विचित्र कर्मबंध यानि अनंत संसार !

गौतम : परंतु प्रभु उपवास से लेकर १८० उपवास तक का घोशतिघोर तप सिर्फ जयणा नहीं होने से निष्फल जाता है ?

वीर : हाँ ! गौतम ! तू हजारबार पूछेगा, तो भी ये ही उत्तर है ।

गौतम ! तू सोच... गधा-ऊंट-भैंस-बैल ये सभी जीव भी घोर कष्ट सहन करते हैं, और उसके प्रभाव से वे अकामनिर्जरा करके सौधर्मकल्प आदि में भी उत्पन्न होते हैं, परंतु उनके पास संयम कहाँ है ? इसलिए देवलोक में से च्यवन होने के बाद वापस तिर्यचादि गतिओं में भटकते ही है ना ! और उसमें भयंकर दुःखों के पात्र बनते ही है ना !

जन्म का दुःख, बुद्धये का दुःख, मरण (मृत्यु) का दुःख, रोगों का दुःख, अनेक शारीरिक दुःख, अनेक मानसिक दुःख, गर्भावास का दुःख ! जो गर्भस्थान अत्यंत गंदा है, बिभत्स है, गहरे अंधकारवाला है... क्या करे उसका वर्णन ?

साधु संयमजयणा अगर नहीं पालन करे, तो जन्म-बुद्धापा-मरणादि घोर दुःखों का हमेशा सर्वनाश नहीं ही होगा । इसलिए गौतम ! मैंने कहा कि संयमजयणा के बिना बहुत बड़ा भी तपादि कायकलेश निष्फल है ।

गौतम : अगवंत ! जो आत्मा संयमजयणा को अची तरह खोचती है, अच्छी तरह पालती है, अच्छी तरह आचरण करती है वह जल्दी से ही इस जन्म-बुद्धापा-मरणादि रूप संसार से मुक्त होती है ?

वीर : गौतम ! थोड़ी होती हैं, थोड़ी मुक्त नहीं होती हैं...

गौतम : क्यों ऐसा ?

वीर : जो आत्मा संयमजयणा पालती है, परंतु खुद की आत्मा को कुछ अल्पप्रमाण में बराबर पहचाने नहीं, यानि कुछ राग रह जाये, तो वे लंबे समय के बाद संसार से मुक्त बनती हैं ।

जो आत्मा मूल से ही सभी शल्यों को उखेड़ दे, लेश भी राग नहीं रहने दे क्योंकि आत्मा को बराबर पहचान लिया है, जो आरंभ और परिग्रह से रहित है, जो ममतारहित है, जो अहंकार रहित है, जिसे राग-द्वेष-अज्ञान-मिथ्यात्व-

कषाय नहीं है, जो संपूर्ण शुद्ध भाववाली है, जो मन में दीनता बिना की है, जो एकांत से निर्जरा के लक्ष्यवाली है, जिसने परमश्रद्धा-संवेग-वैराग्य को प्राप्त कर लिया है, जिन्होंने सभी मद-भय-गार्व-विचित्र अनेक प्रमादों को छोड़ दिया है, जिन्होंने घोर परिष्वष्ट और उपसर्गों को जीत लिया है, जिन्हें आर्त-टौद्रध्यान लेश भी परेशान करता नहीं है, सभी कर्मों के क्षय के लिये जो सर्वज्ञकथित संयमजयणा को पालती हैं, वे आत्मा बहुत जल्दी से संसार से मुक्त होती हैं।

गौतम ! उसके लिये मैंने कहा कि “संयमजयणा पालनेवाली भी कोई आत्मा जल्दी मोक्ष में नहीं जाती और कोई आत्मा जल्दी मोक्ष में जाती हैं...”

गौतम : आत्मा इस संसार से मुक्त होती हैं, तो कहाँ जाकर रहती हैं ?

वीर : गौतम ! जहाँ बुद्ध पा नहीं है, जहाँ मौत नहीं है, जहाँ रोग नहीं है, जहाँ अपयश नहीं है, जहाँ गलत आरोप नहीं है, जहाँ संताप नहीं है, उद्धेश नहीं है, झगड़े नहीं है, गरीबी नहीं है, द्वन्द्व नहीं है, क्लेश नहीं है, इष्ट वियोग नहीं है...

ज्यादा तो क्या कहना ?

जहाँ एकांत से सुख है, अक्षत सुख है, ध्रुव-शाश्वत-निरुपम-अनंत सुख है, ऐसे मोक्ष में वह आत्मा रहती है।



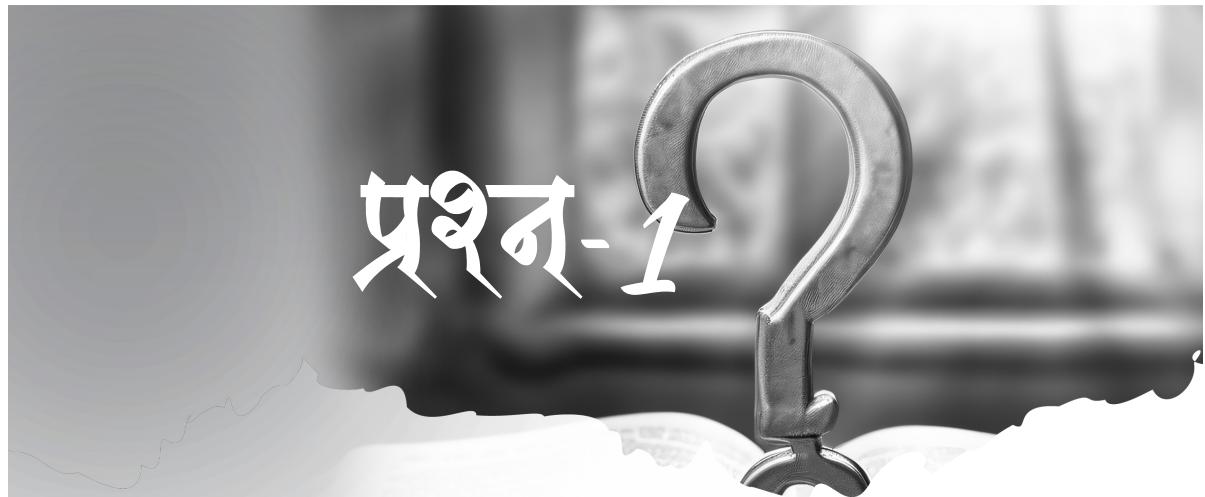


देवी शील के सामने रजोहरण लेकर खड़ी हैं। आकश में से शासनदेवी पुष्प बरसा रही है। दुश्मन कुछ भी कर नहीं पा रहे हैं

राजा ऋकिमणी

जिज्ञासा - क्षमाधान

राजा ऋकिमणी की घटना पढ़ते-पढ़ते बहुत सारे प्रश्न खड़े हो सकते हैं। मैंने एक प्रयास किया है कि “मैं ही उन प्रश्नों को छाड़ा करके उसके उत्तर दूँ। उससे बहुत लोगों को बहुत प्रश्नों के उत्तर मिल जाएंगे।” ये प्रश्न किसी ने मुझे पूछे नहीं है, परंतु मैंने ही इन प्रश्नों को खड़े किये हैं और उसके उत्तर दिये हैं। उसमें कुछ भी भूल हो तो क्षमायाचना करता हूँ।

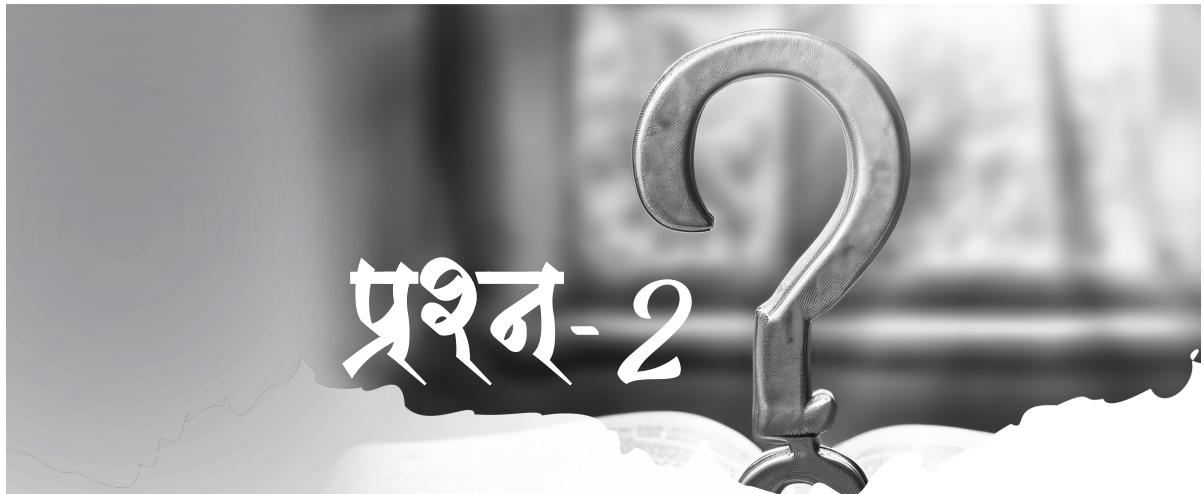


(१) जिज्ञासा : सूर्यश्री ने पूर्व भव में ऐसा ओचा कि “मेरी सौतन मर जाये तो अच्छा, जिससे उसका पुत्र भटकता रह जाये, उसका विकास नहीं हो।” तो उसके कारण इस भव में उसकी माता मर गई... ऐसा क्यों? उसने दूसरों के मौत का विचार किया, तो खुद की मौत लाने वाले कर्म ही बंधने चाहिए ना?

क्षमाधान : जिनागम का एक सिद्धांत है “जोगा पर्याप्तएसं...” जीव के मन-वचन-काया के योग के अनुसार कर्मप्रकृति का बंध होता है। सूर्यश्री ने पूर्वभव में जो विचार किया था, उसमें सौतन की मौत मुख्य नहीं थी, परंतु

उसका बेटा आवारा हो जाये... यह भाव महत्त्व का था, क्योंकि उसके बेटे का विकास नहीं होगा, तो सूर्यश्री का बेटा राजा बन जाएगा... इसलिए “वह लड़का अनाथ बन जाये ।” यह भाव मुख्य था । इसलिए खुद भी इस भव में अनाथ बन गई...

हाँ ! सौतन पर छेष था, इसलिये “सौतन मर जाये ।” ऐसा भाव होता, तो तो अवश्य खुद भी ऐसा ही कर्म बांधती, जिससे खुद की मौत हो जाये...



(२) जिज्ञासा : सूर्यशिव ने खुद की बेटी को काट डालने आदि का विचार किया, तो उसने भी वैसे कर्म बांधे ही होंगे कि “खुद भी कट जाये...” तो वह तो उस ही भव में मोक्ष में गया, उसे तो कुछ दुःख आया ही नहीं ना !

समाधान : उसने कर्म तो बांधे ही होंगे, परंतु उसके बाद चारित्र लिया, आलोचना आदि की, इसलिए वे कर्म उदय में आने के पहले ही नष्ट हो गये, इसलिए उसे किसी भी प्रकार का दुःख नहीं आया और मोक्ष की प्राप्ति हुई ।

डायाबिटीज्वाला मिठाई आये, तो डायाबिटीज्वा बढ़ेगी ही, परंतु अगर वह इन्स्युलिन ले ले, तो नहीं बढ़ती... वैसे यहाँ समझना ।

परंतु इतना नियम तो है ही कि, जीव जैसा करेगा, उस प्रकार का कर्म बंधता है । अब वह कर्म उदय में आये कि न आये, यह बात अलग ही है ।

प्रभुवीर ने कान में सीसे का रस डाला, तो कान में ही कीले ठोकी गई...

॥ प्रभुवीर ने उच्चगोत्र का अभिमान किया, तो उच्चगोत्र ही गया...

॥ गोशाला ने अद्विशस्त्र से दो साधु को जला दिया, तो खुद अनंतभवों में शस्त्रों से ही मरेंगे ।

॥ कलावती ने पोपट की दो पंखों को काट था, तो उसके दो हाथ कट गये...

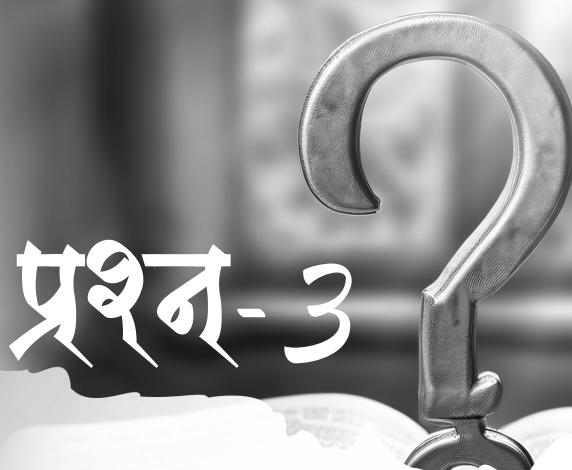
॥ सीता ने साधु पर शीलभ्रष्टा का गलत आरोप रखा था, तो उसके ऊपर शवण के वहाँ शीलभ्रष्ट होने का आरोप आया ।

॥ बाहु ने साधुओं को गोचरी वपराने रूपी भक्ति बहुत की, तो उसे चक्रवर्ती का भोग मिला ।

॥ सुबाहुने साधुओं के हाथ-पैर ढबाने रूपी भक्ति बहुत की, तो उसे दोनों हाथ में अजोड़ शक्ति उत्पन्न हुई ।

॥ दमयंती ने अनेक प्रतिमाओं के कपाल पर सुवर्ण-रत्नादि के तिलक करवाये, तो उसके कपाल में सूर्य जैसा प्रकाश देनेवाले तिलक का सर्जन हुआ ।

आप अगर कहानियाँ पढ़ेंगे, तो उसमें ऐसे उदाहरण मिलेंगे...



(3) जिज्ञासा : सूर्योश्वर ने बेटी को बेचा, वह तो मन नहीं होने पर भी

बेचनी पड़ी, परंतु उसके बाद वह लङ्कियों का अपहरण करके बेचने का धंधा क्यों करने लगा ?

समाधान : जीव में खराब प्रवृत्ति करने के संस्कार अनादिकाल से है, इसलिए ही वे अतिगाढ़ हैं। इसलिए ही छोट भी निमित्त मिले, तो तुरंत वे संस्कार जाग्रत हो जाते हैं। इसलिए ही शास्त्रकार कहते हैं कि “कारणसर अपवाद की = खराब प्रवृत्ति की छूट है, परंतु तो भी वह नहीं करे वह ही ज्यादा अच्छा है। क्योंकि उसमें निष्ठुरता की शक्यता है।”

बिमारी की वजह से नवकारणी करने का अपवाद का सेवन करे, तो उसकी ऐसे तो छूट है, परंतु जीव को तो एकासणे के बदले तीन समय वापरने का ही ज्यादा अच्छा लगता है ना ! अनादिसंस्कार तो बहुत-बहुत खाने के ही है। इसलिए बाद में बिमारी खत्म होने के बाद भी वह नवकारणी नहीं छोड़ता... एकासणा चालु नहीं करता ।

यह तो एक उदाहरण है। ऐसा अभी में अमङ्ग लेना ।

सूर्यशिव ने खुद की सग्नी बेटी को बेचा, वह तो मजबुरी के कारण से बेचना पड़ा। परंतु उसके कारण उसमें गलत संस्कार घुस गये। पुराने संस्कार तो होंगे ही, उन्होंने इस नये निमित्त और नये संस्कारों को बल दे दिया। इसलिए उसे धन कमा लेने का रास्ता मिल गया। फिर तो मजबुरी के बिना भी मात्र धन की लालसा से अनेक लङ्कियों की जिदगी बरबाद कर दी ।

वेश्या के साथ पाप करना यह एक पाप, और अनेक निर्दोष लङ्कियों को वेश्या बनाना यह दूसरा पाप... यह दूसरा पाप अतिभयानक है।

आइसक्रीम खाओ, तो एक का ही पाप...

आइसक्रीम की केकटरी खोलो, तो लाञ्छों आइसक्रीम का पाप !

इसलिए ही इस बाबत में अत्यंत जाग्रत रहना...

किसी भी प्रकार के खराब संस्कारों को जाग्रत होने नहीं देना। उसके लिये कोई भी खराब प्रवृत्ति नहीं करना। एक बार खराब प्रवृत्ति बारबार खराब प्रवृत्ति करवाएँगी ।

शराब जैसी है यह खराब प्रवृत्ति ! एक बार पी हुई शराब हजारों बार शराब पीलाएँगी। वैसे एकबार की हुई खराब प्रवृत्ति धीरे-धीरे हजार बार खराब प्रवृत्ति करवाएँगी, और वह खराब प्रवृत्ति धीरे-धीरे ज्यादा से ज्यादा बड़ी होती

जायेगी ।

एकबार स्त्री के सामने देखा... फिर वह देखने की प्रवत्ति चालु... फिर बाते करने की प्रवृत्ति चालु... फिर एकांत में मिलने की प्रवत्ति चालु... फिर गंदे पापों की प्रवत्ति प्रथम बार और फिर बारबार...

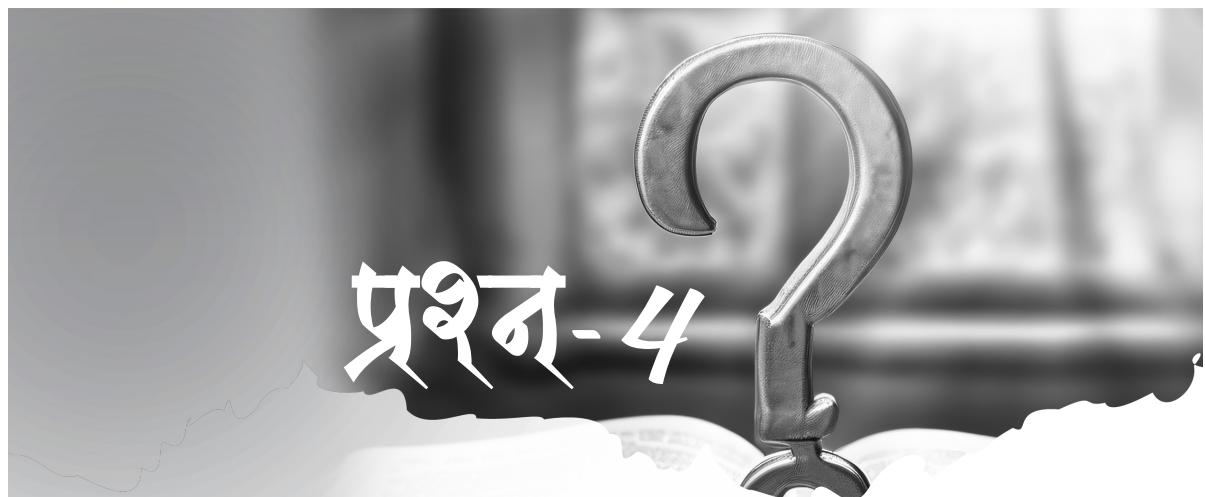
जीवन को बरबाद करने का सरल रास्ता है सिर्फ एक ही पापप्रवृत्ति ! जीव तो एक ही बार खशब प्रवृत्ति करता है, उसके बाद तो वह खशब प्रवृत्ति ही अनेकबार उसे बड़ी-बड़ी होती जाती खशब प्रवृत्ति करवाती है ।

इन्द्रियों को अनुकूल प्रवृत्ति करना यह जीव का अनादि संस्कार है...

इन्द्रियों को प्रतिकूल प्रवृत्ति करना यह जीव का अप्रगट स्वभाव है...

अनादि संस्कार अनंत संसार का कारण है ।

अप्रगट स्वभाव अगर प्रगट हो, तो संसार के अंत का कारण है...



(४) जिज्ञासा : सिर्फ चावल के लिये जो बताया है कि “बेटे ने माता को मार ड़ालने की धमकी दी...” आदि यह सब समझ में आये वैसा नहीं है ।

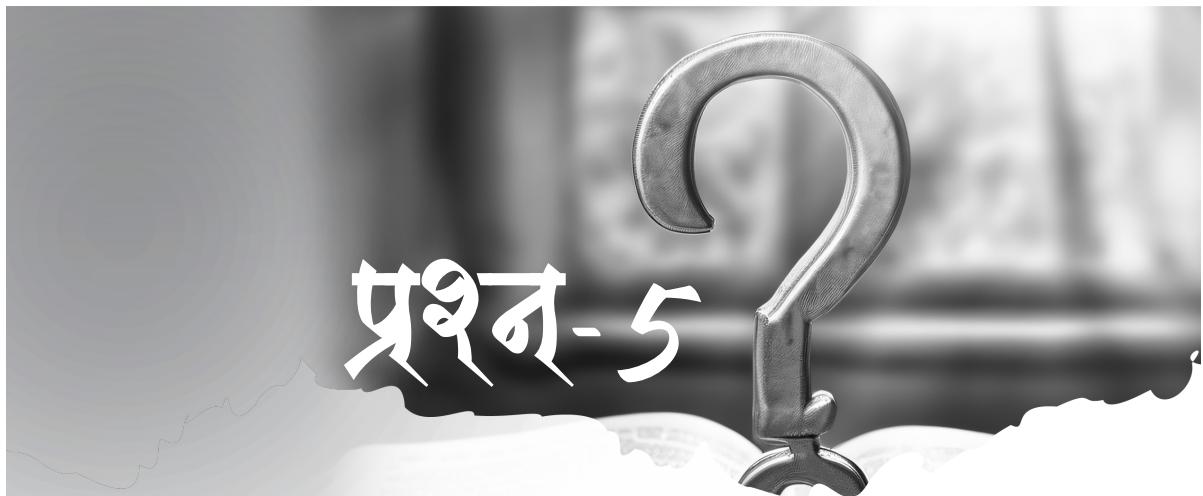
समाधान : जब जिस वस्तु का अभाव हो, तब उसका भाव = किंमत बहुत बढ़ जाता है । आज भी भारत आदि में जहाँ-जहाँ पानी की तंगी है, वहाँ लोग ५-१० कि.मी. दूर भी पानी लेने जाते हैं । बड़ी लाइन में खड़े रहते हैं । पतेलियों में भी पानी भरते हैं । उसमें मारामारी और खून भी होते हैं ।

ऐसा ही भोजन के लिये भी होता ही है । अरे, स्वामिवात्सल्य या पारणे में एक-दो आइटम अगर कम पड़ जाये, तो जिसे नहीं मिलती है, उन्हें कितनी ही बार क्रोधित होकर गालियाँ बोलते हुए भी सुना है ना ! ट्रस्टीओं को कंजुस-वैसाखाऊ आदि गाली देने में उन्हें कहाँ समय लगा है ? तो यहाँ तो एक-एक दाने की किमत थी, क्योंकि आठ साल दुष्काल को बीत गये थे ।

गोविंद बड़ा ज्ञानी था, समृद्ध था, इसलिए राजा के साथ उसके संबंध अच्छे होंगे । इसलिए उसे राजा के तरफ से इस तरह शत्रि भेट के रूप में चावल का भोजन आदि मिला हो, यह शक्य है, परंतु उसके लिये तो उसकी किमत बहुत है ना !

उसे पांच-सात लड़के-लड़कियाँ थे, वह भी अंदाज आता है । तो माता-पिता का कर्ज तो होता है ना कि “सभी को समान भाग में भोजन देना...” यह सब देखते हुए जो हुआ है, उसमें आश्वर्य नहीं लगता ।

चीन में सालों पहले दुष्काल यड़ था, तो एक-एक कटोरी चावल सभी को दान रूप में दिए जाते थे । अरे, आज भी कुटपाथ-झोंपड़ी में रहते गरीबों की हालत तो देखो, तो सभी बातों का अंदाज आ ही जाएगा ।



(५) जिज्ञासा : “लद्धिलियं च बोहि ।” इसका स्पष्ट अर्थ बताओ ।

समाधान : आज जैनधर्म मिला । उसमें इतनब्रयी की आराधना करने की अनुकूलता मिली । अब जो आराधना करता है, वह ऐसा ही पुण्य बांधता है कि

आनेवाले भव में वापस ऐसी ही अनुकूलता मिलती है। तो वह वापस विशिष्ट आराधना करता है। इसतरह अंत में उत्कृष्ट आराधना होती है और जीव मोक्ष पाता है।

परंतु रत्नब्रयी की आराधना करने की अनुकूलता होने के बावजूद जो इस भव में आराधना नहीं करता, तो उसे वैसा पुण्य बंधता नहीं है और फिर वह कहे कि “अगर मुझे अगले भव में अनुकूलता मिलेगी, तो मैं धर्माराधना करूँगा।” तो यह शक्य ही नहीं है, क्योंकि वह पुण्य है नहीं, इसलिये अब अनुकूलता मिलेगी ही नहीं, तो आराधना आने वाले भव में कैसे करेगा?

बहुत लोग प्रार्थना करते हैं “आनेवाले भव में महाविदेह में जन्म लेना है। वहाँ सीमंधर प्रभु के पास दीक्षा लेनी है, और मोक्ष में जाना है।”

पर वे इस भव में अच्छे गुरु के पास तो दीक्षा ले, सच्ची आराधना तो करे, फिर आगे की बड़ी-बड़ी बात करे, तो अच्छा...

किसी को १ लाख रुपये मिले, वह १ लाख रु. का १ लाख दस हजार भी कर सकता नहीं है और बातें ऐसी करता है कि “अगर मुझे कोई १ करोड़ रु. व्यापार करने के लिए दे, तो मैं उसके दो करोड़ रु. करके बताऊँगा... फिर लोग उसे मूर्ख ही गिनेंगे ना?

इन्वेस्टर उसे कहेगा ही कि “तू पहले १ लाख में से १० हजार कमाकर बता तो तुझे १० लाख दूँगा। उसमें से फिर १ लाख कमाकर बता, तो तुझे १ करोड़ दूँगा...”

१०-१२ वी कक्षा में ऐखडपट्टी करनेवाला, इसलिए ही कम मार्कर्स लानेवाला लड़का बड़ी-बड़ी बातें करे कि “मैं मेडीकल साइंस में जाऊँगा, फिर बहुत पढ़ूँगा, फिर डॉक्टर बनूँगाफ, तो कौन मानेगा?

जो अभी १ लाख में से १० हजार कमाये, उस पर विश्वास आ सकता है कि यह १ करोड़ में से १० लाख भी कमा सकेगा।

जो अभी जबरदस्त मेहनत करके अच्छे मार्कर्स लाये, उस पर विश्वास आता है कि वह भविष्य में डॉक्टर बनेगा।

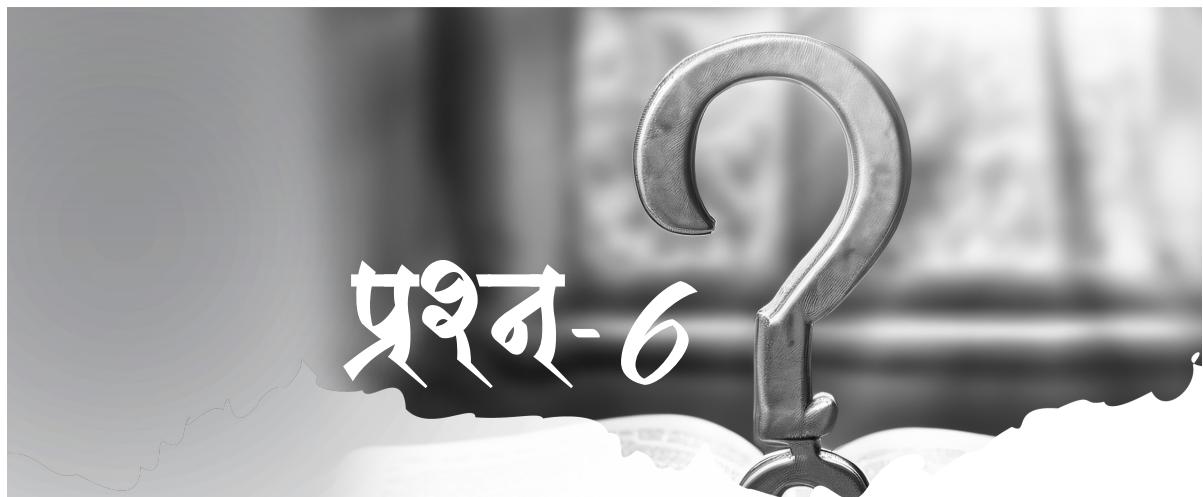
वैसे, अभी खुद की पूरी शक्ति लगाकर जो धर्माराधना करता है, वह ही आने वाले भव में सीमंधर प्रभु को पाकर ज्यादा विशिष्ट आराधना कर सकेगा। बाकी तो सपने देखनेवाले बहुत होते हैं, और सपने सच बहुत मुश्किल से होते

है ।

एक ही बात...
वर्तमान को सुधार लो,
भविष्य अपनेआप सुधर ही जाएगा ।

जिसे वर्तमान में जीना आता है, उसे भविष्य में भी जीना आता ही है, क्योंकि भविष्य में भी तब ही जीना होगा, जब भविष्य वर्तमान बनेगा ।

“खण्ड जाणाहि पंडिए” यह आचारण का वचन याद रखना । अवसर को पहचान लो, जो मौका मिला है, उसे पहचान लो...



प्रश्न-6

(६) जिज्ञासा : सुलभबोधि और दुर्लभबोधि यानि क्या ?

समाधान : सुलभ यानि मेहनत के बिना जल्दी-जल्दी जो मिल जाये, वह...

बोधि यानि सम्यक्त ! वैराग्य !

एकदम छेटा निमित्त मिले, और सम्यक्त मिल जाये, वह आत्मा सुलभबोधि कही जाती है ।

हजारो निमित्त मिले, तो भी सम्यक्त-वैराग्य नहीं मिले, वह आत्मा दुर्लभबोधि कही जाती है ।

गोविंदपत्नी, शीलसन्नाह ये सभी दुर्लभबोधि थे ।

सूर्यश्री ने गोविंदपत्नी की कितनी देशना सुनी, ग्वालिन ने भी सुनी,

परंतु उन्हें कुछ भी असर नहीं हुई, यह सब दुर्लभबोधि कहे जाते हैं।

गोविंद, सूर्यशिव ये सभी अपेक्षा से सुलभबोधि हैं, क्योंकि एकाद देशना मिली, और वे सभी प्रतिबोधित हुए।

ऋक्मिणी को एक ही देशना में प्रतिबोध हुआ, दीक्षा ले ली... उस अपेक्षा से सुलभबोधि, परंतु अंत में शीलक्रष्ण ने उन्हें बहुत समझाया, किर भी वे नहीं समझ सके, नहीं माने, इस अपेक्षा से दुर्लभबोधि ! और उसके बाद के एक लाख भव तक दुर्लभबोधि !

इस तरह सुलभबोधिता और दुर्लभबोधिता द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव के आधार से बदलती रहती है।

चिलातिपुत्र सिर्फ तीन शब्द सुनकर प्रतिबोधित हुए...

सनतकुमार सिर्फ शरीर में रोग होने का पता चलने पर प्रतिबोधित हुए...

ये दोनों सुलभबोधि के प्रसिद्ध उदाहरण हैं।

गोशाला अनंतकाल तक दुर्लभबोधि ! उससे भी ज्यादा दुर्भव्य !

दुर्लभबोधि तो अच्छा कि उसे बोधि मिल सकती है, परंतु मेहनत बहुत करनी पड़ती है।

जैसे मेतार्जमुनि को उस ही भव में वैशाख जागृत हुआ, परंतु उसके लिए बहुत मेहनत करनी पड़ी है।

दुर्भव्य तो ऐसा कि चाहे कितनी भी मेहनत करे उसका काल नहीं आता, तब तक उसे बोधि नहीं ही मिलती, उसका भव्यत्व नहीं ही पकता।

जो सुलभबोधि होता है, वह सुभव्य तो होता ही है - उदा. सनतकुमार...

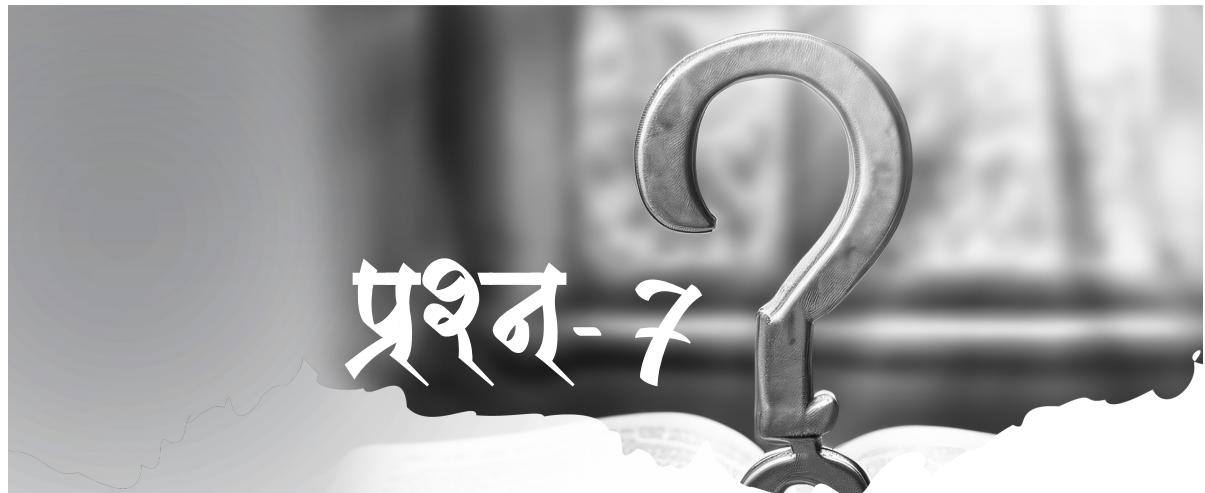
जो दुर्लभबोधि होता है, वह सुभव्य भी हो सकता है - उदा. मेतार्ज-मुनि...

जो दुर्लभबोधि होता है, वह दुर्भव्य भी हो सकता है - उदा. गोशाला... आदि...

जो सुभव्य होता है, वह सुलभबोधि भी हो सकता है - उदा. सनतकुमार...

जो सुभव्य होता है, वह दुर्लभबोधि भी हो सकता है - उदा. मेतार्ज-मुनि...

जो दुर्भव्य होता है, वह दुर्लभबोधि ही होता है - उदा. गोशाला...
आदि...



प्रश्न- 7

(७) जिज्ञासा : ऋक्विमणी के भव में जो माया की, उसके काण्डे से अंत के भव में भी वह स्त्री बन जाये, यह कैसा ? और १ लाखवें भव में तो वह आचार्य बनती है, पुरुष बनती है, तब वह स्त्री नहीं बनती... यह कैसा ?

समाधान : अरे, आप १ लाख भव की कहाँ बात करते हो, प्रभुवीर ने मरिचि के भव में नीचगोत्र बांधा, वह असंख्य भव के बाद अंतिम भव में भी उदय में आया ही ना ! और उसके पूर्व में २५-२६ और ऐसे बहुत सारे भवों में उच्चगोत्र का भी उदय हुआ ही ना !

जितना नीचगोत्र बांधा, वह सब निकाचित नहीं था, कुछ था । और उसमें से भोगते भोगते थोड़ा बाकी रह गया था, तो वह अंतिम भव में ८२ दिन में भोग लिया था । बीच में असंख्य भवों में बहुत सारा निकाचित नीचगोत्र भोग ही लिया था । नाटक और तिर्यच में नीचगोत्र बड़े प्रमाण में भोगा जाता है ।

नीचगोत्र के सामने उच्चगोत्र भी होता है, वह भी निकाचित हो सकता है । तो उस-उस समय वे उच्चगोत्र को भी भोगते गये ।

उस ही तरह ऋक्विमणी के भव में जो स्त्रीवेद निकाचित बांधा था, उसमें

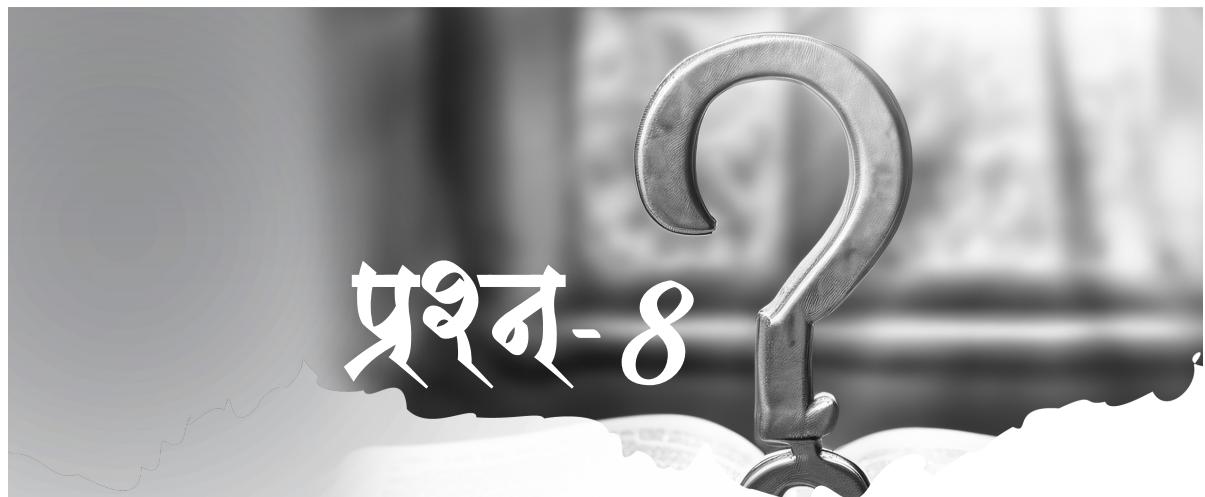
से ३ लाख भव में बहुत भोगा ही होगा, और जो बाकी था, वह अंत के दो भवों में भोग लिया था ।

स्त्रीवेद की तरह पुरुषवेद भी होता है, और वह भी निकाचित हो सकता है, इसलिये उन-उन भवों में पुरुषवेद भी भोग लिया । पूर्व से तीसरे भव में गच्छाधिपति बने, तब पुरुषवेद भोगा ।

यानि स्त्रीवेद कर्म अंतिम दो भव में क्यों उदय में आया ? यह प्रश्न ही अस्थान पर है । कर्म द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव-भव को लेकर उदय में आते हैं ।

पीठ-महापीठ ने स्त्रीवेद बांधा ही था, परंतु वे कालधर्म पाकर अनुत्तर में गये । वहाँ स्त्रीवेद नहीं होता, इसलिए पुरुष ही बने । अंतिमभव में स्त्री बने, क्योंकि मानवभव में स्त्री बन सकते थे, तो निकाचितकर्मवश स्त्री बने और मोक्ष में गये ।

मल्लिकुमारी ने भी निकाचित स्त्रीवेद बांधा था, परंतु देवलोक में तो पुरुष ही बने, उसके बाद स्त्री बने...



(८) जिज्ञासा : यह “स्त्रियाँ पापों का घर है ।” आदि नौ तरह से स्त्रियों का खराब स्वरूप बताया है । शास्त्रकार स्त्रियों के प्रति इतना तिरस्कारभाव क्यों रखते हैं ?

समाधान : आप गलत समझ रखते हो । शास्त्रकार चंदनबाला आदि

महासती स्त्रियों को वंदनीय मानते हैं या नहीं ? सभी साध्वीयों को और सभी श्राविकाओं को संघ के भाग रूप मानते हैं या नहीं ? क्यों चतुर्विधि संघ की स्थापना की ? क्यों द्विविधि संघ की स्थापना नहीं की ? साधु + श्रावक + साध्वी + श्राविका के बिना शासन का विच्छेद क्यों माना ? स्त्री के प्रति तिरस्कार होने की बात ही एकदम गलत है ।

परंतु शास्त्रकार जब अशुचिभावना का वर्णन करते हैं तब “शरीर कितना गंदा है ।” वह बताते हैं । उसमें स्त्री-पुरुष दोनों के शरीर की गंदगी को बताते हैं ।

अब तीर्थकरों के शरीर की बात जाने दो...

गणधर, अवधिज्ञानी, मनःपर्यवज्ञानी, पूर्वधर, लब्धिधारी... इन सभी के शरीर गंदे हैं या नहीं ? उनके शरीर में विष्ट है, मूत्र है, खून है, हिँड़ियाँ हैं, रससी है, कफ है, उलटी है... छीः छीः सब ही है... तो शास्त्रकारोंने जब शरीर की घोर निंदा की, तब उन्होंने इन गणधर आदि की निंदा की ? उन पर तिरस्कार किया ? धिक्कार किया ?

शास्त्रकारों को गणधर आदि की आत्मा पर अति-अति बहुमान है, परंतु उन सभी का शरीर तो जैसा है, वैसा बताएंगे ही ना ! शरीर तो पुढ़गल है, वह खुद गणधरादि नहीं है । अरे, वह तो गणधरादि का दुश्मन है, तो गणधरादि पर प्रेमवाले शास्त्रकार गणधरादि के दुश्मन ऐसे शरीर की निंदा नहीं करेंगे ?

अरे, शास्त्रकार यानि कौन ? गणधर भी शास्त्रकार ही है ना ! और वे खुद-खुद के शरीर की निंदा करते हैं, क्योंकि यह शरीर ऐसा ही है तो ऐसा ही बताएंगे ना ! उसमें गलत क्या है ?

यह ही बात स्त्री के लिए सोचो...

आत्मा स्त्री या पुरुष नहीं है, आत्मा आत्मा ही है ।

आत्मा दो तरह से स्त्री कही जाती है, स्त्रीशरीर से और स्त्रीवेदोदय से होनेवाले स्त्रीस्वभाव से !

शास्त्रकारों को स्त्री की आत्मा के लिए कोई तकलीफ ही नहीं है, संपूर्ण शुद्ध सद्भाव है, क्योंकि वह आत्मा सिद्ध-बुद्ध-मुक्त है...

परंतु स्त्री का शरीर और स्त्रीवेद आदि कर्म से जन्य स्त्रीस्वभाव...

ये दो जैसे हैं, वैसा वे बताते हैं ।

आप वे नौ बाबत देखोगे, तो उसमें इन दो को लेकर ही दोष बताये हैं ।
उदा.: “स्त्री को सभी भोगना चाहते हैं...” तो उसमें स्त्री का शरीर ही ऐसा है कि सभी पुरुष उसे भोगना चाहते हैं । वहाँ सत्कार-सन्मान की कोई भावना नहीं होती । स्त्री किसलिये ? भोग के लिये । भोगे बिना मात्र प्रेम करने के लिये स्त्री से कौन शादी करता है ?

इसतरह पुरुष स्त्री में अतिशयी बनकर संसार में यड़ता है, धर्म घोड़ता है, स्त्री को खुश करने के लिये हिंसादि सभी पापों को करता है, और उसके कारण से नरक में जाता है ।

सीता आदि स्त्री के कारण से संघर्ष आदि हुए ही है ना ! उसमें सीता की आत्मा का दोष नहीं है, परंतु वह स्त्रीशरीर ही संघर्ष करवाता है...

एक पुरुष के लिए दो स्त्री के बीच झगड़ा हो, तो वह कितनों को नुकसान करता है ? और एक स्त्री के लिये दो पुरुषों के बीच झगड़ा हो, तो वह कितनों को नुकसान करता है ? कितने सारे युद्ध स्त्रिओं के निमित्त से ही तो हुए हैं...

इसलिये शास्त्रकारों की भाषा का भावार्थ समझना...

उन्हें स्त्री आत्मा के साथ कोई तकलीफ ही नहीं है ।

परंतु स्त्री शरीर और स्त्री स्वभाव ये दो अत्यंत नुकसानकारी हैं, इसलिये वे इन दो वस्तुओं के लिए हमेशा सूचना देते हैं ।

प्र३न्-७

(९) जिज्ञासा : लक्ष्मणा ने चकला-चकली का मैथुन प्रेम देखा और उसकी आलोचना नहीं की, माया की, तो ऋक्मिणी ने शीलसन्नाह युवान को कामविकार से देखा और उसकी आलोचना नहीं की, माया की... दोनों के पाप ऐसे तो समान है ।

फिर भी ऋक्मिणी के १ लाख भव हुए...

लक्ष्मणा का ८० चौबीसी तक संसार बढ़ा ।

१ चौबीसी = १० कोटा कोटि आगरोपम है । ऐसी ८० चौबीसी है । इनमें तो अटबो-अटबो-अटबो भव हो जाते हैं ।

तो पाप समान होने के बावजूद दोनों के फल में फर्क क्यों ?

समाधान : पापों में बहुत अंतर है ।

👑 लक्ष्मणा साध्वी है, मन-वचन-काया से करण-करावण-अनुमोदना के पच्चक्खाणवाली है, और वह अशुभ विचार करती है यानि व्रतभंग करती है ।

ऋक्मिणी संसारी है, व्रत लिया नहीं है, इसलिए वह अशुभ विचार करें, तो भी व्रतभंग नहीं है ।

👑 लक्ष्मणाने तीर्थकर के लिये भी खराब सोचा था कि “प्रभु को इस सुख का ज्ञान नहीं है, इसलिये वे हमें समझ नहीं सकते हैं... उन्हें इस सुख की छूट देनी चाहिए ।” इसतरह तीर्थकर की आशातना की ।

ऋक्मिणी ने तीर्थकर या किसी साधु के लिए भी ऐसा कुछ भी सोचा ही नहीं था... इसलिए ऋक्मिणी ने आशातना नहीं की ।

👑 लक्ष्मणा ने सर्वज्ञ के सामने स्वपाप छुपाने की अतिगंभीर भूल की । वह तो साध्वी है, उसे यह तो पता होता ही है कि “सामने तीर्थकर है, सर्वज्ञ है, सब कुछ जानते हैं ।” और फिर भी वह वहाँ स्वपाप छुपाती है, मतलब उसे स्वकीर्ति आदि की भूख अतिशय होगी यह समझ सकते हैं । आज सोचो कि मैंने कोई पाप किया है, और सामने किसीने नजरोनजर सब देखा है, और मुझे वह पता है, फिर भी मैं उसके सामने ऐसे कहूं कि “यह पाप दूसरे ने किया है ।” तो मेरी झूठ बोलने की निष्ठृता भी कितनी ज्यादा !

ऋक्मिणी ने शीलक्रषि के पास असत्य बोला है । वे क्रषि अवधिज्ञानी है,

परंतु सर्वज्ञ नहीं है, तीर्थकर नहीं है। अवधिज्ञानी सामनेवाले के मन के भावों को नहीं भी जानते हैं और तीर्थकर की अयेक्षा से तो शीलऋषि ज्ञान में, पुण्य में... सभी में बहुत-बहुत-बहुत पीछे गिने जाते हैं, इसलिए उनके सामने ऋक्मणी को असत्य बोलने की हिंमत हो, यह तो किर भी समझ सकते हैं - उसमें अत्यंत निष्ठुरता ही चाहिए - ऐसा ज़रूरी नहीं है।

 लक्ष्मणा को माया-आशातना करने के बाद भी पचास साल Chance मिला ही था कि वह पीछे से भी अपनी भूल का स्वीकार करें... परंतु पचास साल तक घोर तप करने के बावजूद भी उसे ऐसा पश्चात्ताप जागृत नहीं हुआ कि “अब तो भूल का स्वीकार करँ...” इसलिए यह अतिभयंकर निष्ठुरता है। ५० साल प्रायश्चित्त के लिए ही तो = उस पाप को धोने के लिये तप करती ही रहती है, परंतु पाप का सतत उपयोग आने के बावजूद भी एक बार भी पाप का पश्चात्तापादि नहीं हो, वह भारी कर्मी आत्मा ही गिनी जाती है।

ऋक्मणी तो जिस समय माया-असत्य का पाप करती है, उस ही समय मर जाती है, उसे पीछे से लंबा आयुष्य ही नहीं था। इसलिए उसे पापों का स्मरण करने का या उसका पश्चात्ताप करने का मौका ही नहीं मिला। शक्य है कि अगर वह ज्यादा जिंदा रही होती तो उसे पीछे से पश्चात्ताप होता भी सही ! बहुत लोगों को ऐसा होता है कि “तत्काल पश्चात्ताप नहीं होता, परंतु बहुत समय बीतने के बाद पश्चात्ताप होता है...” ऋक्मणी की आत्मा अंदर से इतनी कोमल हो भी सकती है।

 लक्ष्मणा ने मृत्यु के समय कितनी बड़ी भयंकर भूल कर दी “मैंने ५० साल प्रायश्चित्त किया, परंतु जिस मैथुनसुख के लिए प्रायश्चित्त किया, उसे तो मैंने भोगा ही नहीं।”

बाप दे ! साध्वीवेष में मैथुनसुख की इच्छा के उपयोग के साथ मरती है। मैथुनसुख नहीं मिलने के पश्चात्ताप के साथ मरते हैं।

ऋक्मणी को सिर्फ एकबार चक्षुकुशीलता का दोष आया। बस ! उसके बाद मृत्यु तक कामविकार जागृत नहीं हुआ। अंत में माया-मृषा दोष में मर गई... परंतु ऐसे गंदे विचार नहीं थे।

 लक्ष्मणा ने कामक्रीडा आदि के खराब विचार किये थे, चकला-

चकली एक दूसरे को अंगस्पर्श करते हैं, यह सब देखकर उन्होंने अंगसुख के विचार कर लिये थे...

ऋक्मणी ने रूप देखा, वहाँ विकार पैदा हुआ... परंतु कायिक सुख के विचार हुए नहीं... बहुत ऐसे होते हैं, जिन्हें रूप देखना अच्छा लगता है, परंतु गंदे विचार नहीं करते ।

इस्तरह इन दोनों के पाय के बीच आत्मान-जमीन का अंतर है ।

इसलिए उन दोनों की अंसारवृद्धि के बीच भी बड़ा अंतर हो सकता है ।



(१०) जिज्ञासा : पवित्र शील पालनेवाली ऋक्मणी को अचानक ही चक्षुकुर्शीलता क्यों प्रगट हुई ?

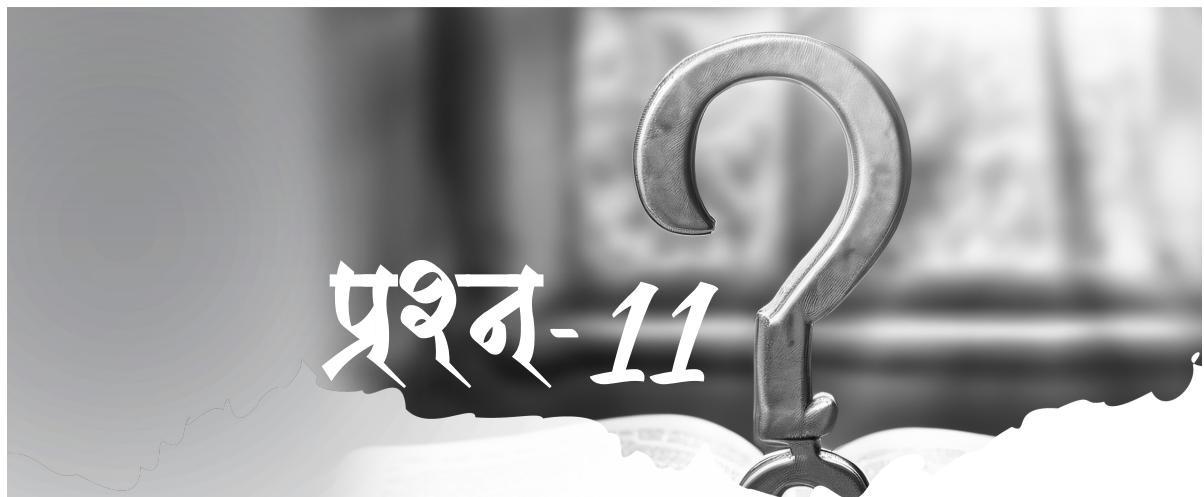
समाधान : लक्षणा और ऋक्मणी दोनों शादी करने के बाद पतिसुख पाये बिना ही विधवा बनी हैं । दोनों में इस सुख की इच्छा तो पड़ी हुई ही है, इसलिए ही तो शादी की थी, परंतु बाद में परिस्थितिवश दोनों निर्मलशील पालती हैं । किर भी अंदर वह इच्छा सूक्ष्म तरह से, गुप्तरूप से पड़ी हुई ही है... इन दोनों ने स्वेच्छा से शीलपालन नहीं स्वीकारा, अगर पति होते तो मैथुन का सेवन करती ही । परंतु पति नहीं है, पुनर्लग्न नहीं है... इसलिये शीलपालन स्वीकारा । फटाओं में अंदर बाल्द होता है, किर तो जैसे ही दीयासलाई (माचिस) उसे छूए कि तुरंत फटाओं कुटता है । वैसे, इन दोनों में मैथुनसुख इच्छा रूपी बाल्द था, किर छोटा निमित्त मिला और दोनों में वासना रूपी फटाओं की प्रवृत्ति हुई ।

शायद इन दोनों को भी खुद में अंदर छुपी हुई इन इच्छाओं का ज्ञान नहीं होगा ।

आज भी ऐसा होता है ना ! बहुत आत्माएँ अच्छे निमित्तों के वश में आकर दीक्षा तो ले लेती हैं, परंतु अंदर छुपी हुई गंदगीओं का उन्हें विशेष अंदाज नहीं होता । दीक्षा के बाद सालों तक ये अंदाज नहीं होता, परंतु सालों के बाद शास्त्र-नप्रभावना आदि कारण से बाह्य निमित्तों में यड़ती हैं, भक्त-शिष्य-प्रवचनशक्ति इन सभी के कारण से अनुकूलताएँ बहुत बढ़ती है, तब वे गंदगीयाँ वापस बाहर निकलती भी हैं...

इसलिये ही पापानुबंध को तोड़ने का अति-अति-अति जबरदस्त उपदेश महोपाध्यायजी ने उपदेशरहस्य ग्रन्थ में दिया है ।

बात छोटी है, परंतु मार्मिक है, सूक्ष्मता से सोचोंगे, ते अंदाज आ जाएगा ।



(११) जिज्ञासा : शीलसन्नाह को जब पता चला कि, “राजा ऋक्षिणी का मुझ पर कामराग प्रगट हुआ है ।” तब उसे सीधा मरने का ही विचार क्यों आया ? उसमें उसकी खुद की क्या भूल ?

अमाध्यान : शील की कोई भूल नहीं थी । और यह विवेक तो उसे भी था ही । परंतु कुछ आत्माएँ बहुत संवेगी होती हैं । इसलिए उन्हें कुछ भाव बहुत जल्दी से प्रगट हो जाते हैं । शील को ऐसे लगा कि “मेरे लिये मैं कोई रागी बने, और

उसकी आत्मा को बिगाड़े, उससे तो अच्छा है इस रूप को ही खत्म कर दूँ ।”
यह एकबार विचार आ गया, परंतु उसने ऐसा कुछ भी किया नहीं । दीक्षा लेने के बाद भी सीधा अनशन नहीं किया । बहुत समय के बाद अनशन का स्वीकार किया है । इसलिए भावना के साथ विवेक भी बराबर रथा है ।

बलभद्र मुनि के रूप को देखकर होश खोकर एक स्त्रीने कुएँ में डालने के लिए मटके (घट) की रसी घट में डालने के बदले खुद के छोटे बालक के गले में लगा दी । बलभद्र ने आवाज देकर उस बहन को जागृत तो किया, परंतु तुरंत उस मुनिवर ने निर्णय लिया कि “अब से गांव-नगर में वहोरने के लिए जाना ही नहीं ।” सिर्फ एक प्रसंग के आधार से उन्होंने कैसा निर्णय लिया ? अभी तक अनेकबार, हजारों बार गोचरी गये ही थे, हजारों बहनों ने उन्हें देखा ही था, कहीं भी कुछ खराब घटना हुई नहीं थी, यह एक घटना बनी, इतने मात्र से गांव-नगर में गोचरी जाने का ही किसलिये बंध कर दिया ? उसमें उनकी तो कोई भूल थी ही नहीं ना !

परंतु महामुनियों के वैराग्य को हम समझ नहीं सकते हैं । उन्हें हुआ होगा कि “जंगल में आनेवालों से मेरा निर्वाह हो जायेगा । गोचरी नहीं मिलेगी, तो तप बढ़ेगा... अच्छा ही है ।” ऐसे *Positive* विचार उन महापुरुषों के लिये एकदम अरल है ।

याद रखना,

कालों को काले दाग से, काजल से कुछ फर्क नहीं पड़ता । परंतु गोरों को छोटा भी काला दाग परेशान कर देता है ।

अनेकबार जेल की हवा खाकर आये हुए बेशरम (नहीं सुधरनेवाले) अपराधीयों को एकबार नया अपराध करके वापस जेल में जाने में कोई शर्म नहीं आती ।

परंतु खानदान इंसानों को तो सिर्फ योलिस घर में आये, उतने मात्र से ही कांसी खा लेने का मन हो जाता है ।

वेश्याएँ, कुल्याएँ अनेक पुरुषों के साथ भोग भोगने के बाद भी हंसते-हंसते जीती है, परंतु पवित्र स्त्री तो सिर्फ खुद पर कोई गलत आरोप रखे, तो खुद ने कुछ नहीं ही किया होने के बावजूद आत्महत्या करने को तैयार हो जाती है ।

अतिपवित्र शील को खुद के रूप के कारण से लक्षिती में उत्पन्न हुई वासना को जानकर मर जाने का विचार आये तो उसमें उसकी पवित्र आत्मा को देखते हुए बिल्कुल आश्वर्य नहीं लगता ।



(१२) जिज्ञासा : शील ने राजसभा में मिछा मि दुक्कड़ क्यों कहा ?

समाधान : चालु राजसभा में से कोई भी कारण बताये बिना निकल जाना यह सम्भवता नहीं कही जाती । और सच्चा कारण तो शील बता सके ऐसा नहीं था । अविनय करने के कारण मिछामि दुक्कड़ कहकर वह निकल गया... ऐसा मान सकते हैं ।



(१३) जिज्ञासा : चक्षुकुशील का नाम लेने में आये, तो भोजन भी नहीं मिलता... ऐसा शील ने मान लिया, परंतु यह तो कुछ अजीब ही मान्यता है। आज अबजो लोग चक्षुकुशील हैं और उन सभी के नाम शेज उनके स्वजन लेते हैं, किर भी सभी को भटपेट भोजन मिलता ही है ना !

खुद की आंखों से परपुर या परस्त्री को खराबभाव से देखनेवाले आज लगभग सभी ही हैं, क्योंकि गोबाइल सभी के हाथ में हैं। परंतु कोई भूखा मरता नहीं है।

चलो, आप ऐसा कहते हो कि “यह पंचमकाल है, इसलिये काल के प्रभाव से यह फल देखने नहीं मिलता।” परंतु उस काल में भी ऋक्षिणी जब सभा में बैठती होगी, तब उसके नाम की जय बोली ही जाती होगी, हजारों लोग उसका नाम बोलते होंगे, तो उन सभी को शेज-शेज के उपवास हो जाने चाहिए ना ! अरे, अगर चक्षुकुशील का नाम लेनेवाले को भोजन नहीं मिले, तो चक्षुकुशील को तो नहीं ही मिलेगा ना ! तो ऋक्षिणी को उस दिन से लेकर कभी भी भोजन मिलना ही नहीं चाहिए ना !

इसलिए ये घटनाएँ सच्ची किस तरह मानना ?

समाधान : आगमवचनों को आप गलत नहीं कहते, परंतु सिर्फ उन्हें सच्चा समझने के लिये युक्तियाँ जानना चाहते हो, ये बहुत अच्छी बात है।

आपने यह सुना होगा कि “प्रभुवीर का अंगुठा मेठ पर स्पर्श (Touch) हुआ और पूरा मेठ कंपने लगा।” बराबर ? अगर एक अंगुठे के स्पर्श से मेठ हिल जाये, तो जब प्रभु राजमहल में चलते हैं, तब राजमहल नहीं हिलेगा। जब प्रभु धरती पर चलेंगे तब भूकंप नहीं होगा ?

हकीकत ये है कि अंगुठे का स्पर्श तो एक निमित्त है, उसके पीछे प्रभु का संकल्प कि “मेठ हिलना चाहिए।” और उस संकल्प के पीछे प्रभु का पुण्य ! इसलिए मेठ हिलता है। प्रभु महल में या जमीन पर चलते हैं, परंतु ऐसा संकल्प नहीं करते कि “यह महलादि हिले।” तो वे नहीं ही हिलते।

अपने जैसे शायद ऐसा संकल्प भी करे ना, परंतु पुण्य नहीं होता, इसलिये अपने संकल्प यूरे नहीं होते हैं।

अब शील की बात करते हैं।

शील के मन में चक्षुकुशीलता के प्रति भारी अलची थी। अब राजा ने

जब प्रश्न किया कि “यहले तू किस राजा की सेवा में था ?” तब अरुचि मन में और जीभ पर आ गई कि “उसका नाम मत लेना, नहीं तो उस दिन भोजन ही नहीं मिलेगा ।”

ये भाव + ये शब्द अरुचि के कारण से उसके मन + जीभ में आ गये ।

अब राजा उन शब्दों की परीक्षा करने लगा । और शील को भी “खुद के वचन सच्चे साबित होने चाहिए ।” ऐसा अभिमान नहीं था, परंतु राजा को बोध करवाना ज़रूरी था कि “चक्षुकशीलता खराब है ।” इसलिए अब परीक्षा के समय जब राजा हाथ में कवल रथकर कहते हैं कि “अब तू उस राजा का नाम बोल, फिर मैं भोजन कर सकता हूं या नहीं वह पता चलेगा ।”

इस परिस्थिति में शील के मन में यह संकल्प आ ही गया था कि “भोजन नहीं हो ।” और ऐसे भाव के साथ उसने शब्द बोला “राजा लक्ष्मणी !” शील का पुण्य तो ऐसा था ही इसलिए लक्ष्मणी शब्द छेत्र निमित्त, परंतु शील का संकल्प + शील का पुण्य इन दोनों के प्रभाव से ऐसी परिस्थिति का सर्जन हुआ कि “राजा आदि उस दिन भोजन नहीं ही कर सके ।”

अब लक्ष्मणी का नाम उसकी राजसभा में रोज बोला जाता था, तो भी वहाँ ऐसा कोई संकल्प नहीं है, और ऐसा कोई पुण्य नहीं है । इसलिए वहाँ किसी का भी भोजन नहीं अटकता । सब सहज तरीके से ही चलता है, उसमें कुछ भी फर्क नहीं होता ।

और ऐसा तो सब जगह देखने मिलता है ।

देवों के पास उत्तर वैक्रिय शरीर बनाने की शक्ति है, परंतु ऐसा संकल्प करे, तो ही उस अनुसार उत्तर वैक्रिय शरीर बनता है, ऐसे ही नहीं बनता है । नरक बहुत संकल्प करते हैं कि “हमें ऐसे-ऐसे शरीर बनाने हैं ।” परंतु उनके पास पुण्य नहीं है, इसलिए उनके संकल्प के अनुसार कुछ भी नहीं होता ।

राजा के रसोईघर में हजारों वस्तुएँ बन सके वैसा है । परंतु राजा जो संकल्प करता है, इच्छा करता है, आदेश करता है, उस अनुसार वस्तुएँ बनती हैं - राजा उपवास करे तो कुछ नहीं बनता ।

ऐसी शंका भी होती है कि “इस तरह तो शील मानो कि किसी तीर्थकर का नाम बोले और संकल्प करे कि किसी को भोजन नहीं मिलो, तो वहाँ किसी

को भोजन नहीं मिलेगा ना ? ”

परंतु यह शंका गलत है । उत्तम आत्माएँ और विशिष्ट पुण्यशाली आत्माएँ इस तरह गलत, गंदे, खराब संकल्प नहीं ही करते हैं । ऐसे संकल्प करने के लिए जो आत्मा तैयार हो जाये, वह आत्मा ऐसी मिलिन होती है कि उस आत्मा के पास प्रायः ऐसा विशिष्ट पुण्य होता ही नहीं है, इसलिए उनके संकल्प के अनुसार कुछ होता ही नहीं है ।

उसके बावजूद किसी अधम आत्मा के पास अगर यापानुबंधी पुण्य हो, तो कभी उनके खराब संकल्प भी उनके पुण्य प्रताप से सफल हो भी जाते हैं ।

गोशाला कितना विचित्र था ना ! किर भी उसने अनेक बार संकल्प + शब्दों का उपयोग किया कि “मेरे गुरु के प्रभाव से यह घर जल जाये ।” आदि और देवों ने प्रभु के नाम के कारण से उन-उन स्थानों को जला दिया । इसमें वे स्थान जलाने थे ही नहीं । भूल सब जगह गोशाला की ही थी । गोशाले के संकल्प + शब्दों को देवों को सफल करने जैसे नहीं थे । गोशाला चाहे कैसी भी चेष्टाएँ करें, कैसे भी बोले, उसके कारण लोग उत्तेजित हो जाये, उसे भिक्षा नहीं दे, तो गोशाला क्रोधित होकर उनके घर को जला देने का संकल्प + शब्द भगवान के नाम से करता, और देव भगवान के नाम के कारण से गोशाले के संकल्प + शब्द को सच्चा साबित कर देते, अनुचित काम कर देते यह कैसा विचित्र लगता है ना ! परंतु ऐसा लगता है कि गोशाले का भी विचित्र पुण्य उदय में होगा ही, तो ही उसकी एकदम विपरीत बातों को भी देवों ने सफल की ।

शील का “भोजन नहीं मिलो ।” ऐसा नेगेटीव संकल्प शील के पुण्यप्रभाव से और अच्छी भावना के प्रभाव से सफल हुआ । उस ही अनुसार “अगर मेरा ब्रह्मचर्य निर्मल हो, तो मुझे शत्रुओं का एक भी घाव नहीं लगे ।” ऐसा शील का संकल्प भी उसके पुण्यप्रभाव और शुभभावना के प्रभाव से सफल हुआ ।

रोज-रोज कुतूहलवृत्ति से लोकरंजनादि के लिए यदि ऐसे संकल्प कोई करता रहे, उसका पुण्य जल जाता है, नाश हो जाता है... किर उसके कोई संकल्प सफल नहीं होते ।

बहुत शांत चित्त से ये सभी यदार्थों के बारे में सोचना ।

प्र१३-१४

(३४) जिज्ञासा : शील ने कौनसे सुगुरु के पास दीक्षा ली ?

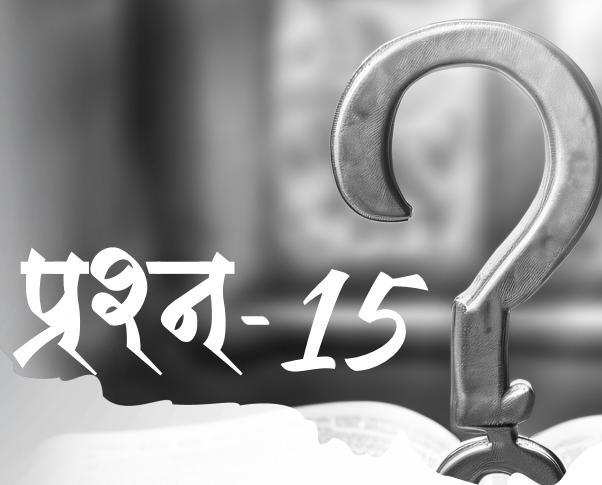
समाधान : शील सुगुरु की राह ही देख रहा था, परंतु घटना में सुगुरु की प्राप्ति की बात नहीं आई । इसमें ऐसा लगता है कि शील बेहोश होकर गिर पड़ , उस समय उसे जातिस्मरण ज्ञान हुआ होना चाहिए । उस समय बेहोश होने का कारण मैंने घटना में चाहे थकान लिया है, परंतु वह मेरी कल्पना है । आगम में बेहोश होने का कारण बताया नहीं है । इसलिए मैंने थकान की कल्पना की, परंतु ऐसा भी हो सकता है कि उस ही समय अगर जातिस्मरण के कारण बेहोश हो गया हो, क्योंकि जातिस्मरण के समय बेहोश होना Fix है । और फिर होश में आया हो, तब तो देवी ही रजोहरण के साथ उपस्थित थी । पूर्वभव में वह साधु था ही, इसलिये जातिस्मरण के द्वारा साधुजीवन सब कुछ ध्यान में आ गया है, इसलिए वह स्वयं-संबुद्ध बन गया था, और खुद ने ही अपने आप दीक्षा ले ली है, और उसे अप्रतिपाति अवधिज्ञान भी हो गया है...

वह प्रत्येक बुद्ध तो नहीं ही माना जायेगा, क्योंकि प्रत्येकबुद्ध को शिष्य नहीं होते, परंतु शीलमुनि को तो विशट शिष्य परिवार हुआ था, इसलिए उन्हें स्वयंसंबुद्ध मान सकते हैं ।

किसी सुगुरु का यहाँ उल्लेख नहीं है । युद्ध के मैदान में ही दीक्षा लेते हैं, वहाँ ही स्वयं देशना देते हैं, और उस ही दिन दूसरों को भी दीक्षा देते हैं । सुगुरु के पास दीक्षा लेनेवालों में एक ही दिन में यह सब संभवित लगता नहीं है । सुगुरु ही देशना देते हैं, सुगुरु ही अन्यों को भी दीक्षा देते हैं... नूतन दीक्षित देशना + दीक्षा किस तरह दे सकते हैं ?

इसलिए ऐसा लगता है कि,

जातिश्मरण होना चाहिए + स्वयंसंबुद्ध बनकर दीक्षा ली होगी... बाकी
अप्रतिपाति अवधि आदि तो लिखा ही है ।



(१५) जिज्ञासा : कितनी देवीयाँ आई थी उस समय ?

समाधान : वर्णन के अनुसार दो देवी आई थी ऐसा लगता है । (१) एक रजोहरण आदि दीक्षा के उपकरण लेकर शील के सामने खड़ी थी । (२) दूसरी आकाश में रहकर घोषणा करती हुई, जयजय बोलती हुई और पुष्पवर्षा करती हुई शासन देवी...



(१६) जिज्ञासा : देव साधु पर पुष्पों की वर्षा करे वह चलता है ? पुष्प तो अचित्त थे, उसका स्पर्श साधु को किस तरह चल सकता है ?

समाधान : (१) पुष्प सीधे साधु पर गिरे, इस तरह नहीं बरसाते, परंतु आख्याय में बरसाते हैं, और वह वर्षा साधु पर हुई है, ऐसा उपचार से बोला जाता है। हकीकत में तो साधु के निमित्त से यह वर्षा हुई है।

(२) साधु महा-अवधिज्ञानी है, आगम व्यवहारी है, उनके आचार सामान्य साधुओं के आचार से अलग भी हो सकते हैं।

(३) देवों ने साधु पर जो पुष्प बरसायें थे, वे वैक्रिय पुद्गल के बनाये होते हैं इसलिए ही अचित्त होते हैं, और आख्याय में अचित्त पुष्प बरसाये हो, ऐसा हो सकता ।

(४) समवसरण में भी पुष्पों की वृष्टि होती है, वहाँ भी साधु कहाँ चले ? आदि प्रश्न होते हैं। उसका जवाब ऐसा दिया जाता है कि “साधु पुष्पादि के संघटे का परिहार करके चलते हैं। अथवा प्रभु के प्रभाव से पुष्पजीवों को पीड़ि नहीं होती...” इस तरह का ही कोई उत्तर इस विषय में समझ सकते हैं। सबसे मुख्य तो ये ही लगता है ना ! उत्तर !



प्र१३-१७

(१७) जिज्ञासा : सिर्फ एक सावद्यवचन बोलने का प्रायश्चित्त पूरी जिंदगी का मौन किस तरह हो सकता है ?

समाधान : एक सावद्यवचन का प्रायश्चित्त यह नहीं है, परंतु उस मुनिवर

ने खुद की भूल के कारण से खुद ही यह बड़ी आशाधना स्वीकार ली । उन्हें हुआ होगा कि “मैंने ऐसी भूल किसलिए की ? अभी दूसरीबार यह भूल नहीं हो, उसके लिए मुझे बोलना नहीं है...”

ऐसी अभी आशाधनाओं में जीवों की भावुकता काम करती है । उदा.: मेघकुमार ने निर्णय किया कि “आंख के सिवाय में पूरा शरीर साधुओं की सेवा में...” तो यह कोई प्रायश्चित्त नहीं था । उन्होंने दीक्षा की पहली शत को ही साधु के लिए दुर्भाव किया, इसलिए उन्हें प्रायश्चित्त के रूप में पूरी जिदगी साधु सेवा करनी पड़े ऐसा नहीं है । परंतु उन्हें भय लगा कि “साधुओं की मैंने आशातना की है, तो मुझे साधुओं की आजीवन सेवा करनी ।”

इसीतरह इस मुनि को भी विचार आया कि “बोलकर मैंने सावध भाषा का उच्चार किया है, तो मुझे अब बोलना नहीं है ।”

यह मौन अनुचित मौन नहीं ही होता, यह समझ ही लेना । क्योंकि अशास्त्रीय मौन का ऐसा अद्भुत फल नहीं मिलता कि वह शीलसन्नाह बने, सुलभबोधि बने, अनेकों का तारक बने ।

वे गाथापाठ करते समय भी बोलते ही होंगे, कोई भी मुनि कुछ कामकाज के लिये पूछे, तो आवश्यक होगा, तो वे बोलते ही होंगे... परंतु उसके अलावा Extra एक भी वचन नहीं बोलना यह मौन उन्होंने अवश्य पालन किया होगा... और गुरु ने भी देखा होगा कि “यह विशिष्ट प्रभावक नहीं है, इसलिए वह मौन लेकर स्वाध्याय करे तो चलेगा ही ।” दसपूर्वधरादि को शासनप्रभावना छोड़कर स्व-आशाधना करने की मनाई है । नौ पूर्वधरादि तो जिनकल्पादि स्वीकार कर सारी शासन-प्रभावना छोड़ ही देते हैं, तो यह साधु तो पूर्वधर भी न हो, कोई विशेष शासनप्रभावक भी नहीं हो, तो गुरु उन्हें आजीवन मौन की अनुमति दे, यह योग्य ही है । उसमें थोड़ी भी भूल लगती नहीं है ।

हरेक जीव की पात्रता अलग-अलग होती है, उसके अनुसार उनकी आशाधना भी अलग-अलग होती है । ढंडण मुनि को स्वलब्धि से निर्दोष गोचरी मिलती नहीं थी, तो उन्होंने नियम लिया कि “मुझे मेरी लब्धि से निर्दोष गोचरी जब तक नहीं मिलेगी, तब तक मैं वापरङ्गा नहीं...।”

अब वे दूसरे साधुओं के द्वारा लाई हुई निर्दोष गोचरी को वापर ही सकते थे, और उसमें उन्हें कोई मना नहीं करता... अठारह हजार साधु उन्हें इसके लिए

स्पोर्ट करते ही । परंतु प्रभु नेमिनाथ ने उनकी यह योग्यता पहचानी कि “वे इस अभिग्रह के प्रभाव से ही मोक्ष पाएंगे ।” इसलिए प्रभु ने उन्हें यह आराधना करने दी और उसके प्रभाव से ही वे केवलज्ञान भी प्राप्त कर सके । प्रभु ने ऐसे नहीं कहा कि ज़इसमें तेरी आराधना बिगड़ती है, तुझे गोचरी के लिये घंटे तक घुमना पड़ेगा । तू स्वाध्यायादि कब करेगा ?” आदि कोई भी बात प्रभु ने उनको की नहीं । गोचरी के लिए लंबे समय तक घुमना ये ही उनके मोक्ष के लिए उत्तम साधना बन गई ।

सार : हर जीव की मोक्ष के लिए साधना अलग-अलग हो सकती है, इसलिये गीतार्थ गुरु हरेक जीव की पाव्रता जानकर उस अनुसार ही उन्हें साधना में जोड़ते हैं, उसे उसकी साधना के लिये अनुमति देते हैं ।

प्रश्न-18

(१८) जिज्ञासा : राजा ऋक्षिणी जब दीक्षा के लिए तैयार हुई, तब ही शील मुनि ने उनके पास से आलोचना क्यों नहीं करवाई ? दीक्षा के पहले तो आलोचना तो करने में आती ही है ना ! अंत में अनशन के समय ही वह आलोचना क्यों करवाई ? दीक्षा के समय ही उन्हें कहा होता और अगर ऋक्षिणी पाप नहीं स्वीकारते, तो उन्हें अपाव्र जानकार उन्हें दीक्षा ही नहीं देते ना ?

अनाधान : (१) “दीक्षा के समय आलोचना करने में आती ही है”, ऐसा नियम ध्यान में नहीं है । उस समय जीव का उत्साह-उल्लास देखकर दीक्षा

दी जाती । सामान्य आलोचना करने में भी आती होगी, परंतु अनशन के समय तो एकदम व्यवस्थित आलोचना करने में आती ही है । क्योंकि अब मरना है । और अगर आलोचना + प्रतिक्रिया के बिना मृत्यु हो, तो अनंत या दीर्घ संसार होने की शक्यता रहती ही है ।

(2) दीक्षा के समय शीलमुनि को ऋक्मिणी के चक्षुकुशीलता पाप का स्मरण नहीं हुआ होगा । इसलिए उन्होंने मानो कि आलोचना कराई भी हो और ऋक्मिणी ने चक्षुकुशीलता पाप की आलोचना नहीं भी की हो, तो भी मुनि को वह याद ही नहीं आने से दीक्षा के समय मुनि ने उनके पास उसकी आलोचना नहीं करवाई, परंतु जब अनशन का अवसर आया, तब तो इस बाबत में विशेष से ध्यान देना ही पड़ता है और ये ध्यान देने के कारण उन्हें ऋक्मिणी का चक्षुकुशीलता का पाप याद आया होगा और इसलिए उसकी आलोचना करने के लिये विशेष से प्रेरणा की होगी...

(3) दीक्षा के समय शीलमुनि को ऋक्मिणी का यह पाप याद भी हो, आलोचना कराई भी हो, परंतु उस समय ऋक्मिणी को तो वह पाप याद ही नहीं था । वह कुछ छुपाने का पाप नहीं कर रहे थे, वह तो दीक्षा लेने के अपूर्व उल्लास में है । इसलिए मुनि ने सोचा होगा कि “अभी ऋक्मिणी को यह पाप याद नहीं है, इसलिये बोल नहीं रही है । पाप याद होने के बावजूद जान-बूझकर नहीं बोलने का पाप वह नहीं कर रही है... अभी दीक्षा का अपूर्व भाव है, और वह स्वयं कोई माया आदि नहीं कर रही होने से उसे कोई दोष नहीं है, तो अभी तो उस बात को महत्व देने की जल्दत नहीं है...” इसलिए दीक्षा दी ।

ध्यान रखना, बड़े से बड़ा पाप भी आत्मा अगर भूल गई हो, और इसलिए गुल को नहीं कहती हो, तो वह मायावी नहीं है, सरल है... उसकी आलोचना शुद्ध ही गिनी जायेगी, अशुद्ध नहीं... दीक्षा के समय ऋक्मिणी शुद्ध ही थी, अशुद्ध नहीं... इसलिये उस बात पर मुनि ने विशेष भाव नहीं दिया होगा, ऐसा हो सकता है ।

अनशन के समय भी अगर मुनि ने वह पाप याद कराया नहीं होता, तो ऋक्मिणी शुद्ध ही थे, क्योंकि उन्हें तो वह पाप याद ही नहीं था । उन्होंने सरलभाव से ही सब आलोचना की थी, परंतु अगर इस तरह अनशन करते, तो माया-कपट दोष तो नहीं गिना जाता, परंतु आत्मा में पड़े हुए चक्षुकुशी-

लता के संस्कारों का नाश नहीं होता, वे संस्कार तो साथ में ही रहते। उसके कारण आनेवाले भव में भी उसे कहीं ना कहीं चक्षुकशीलता तो आ ही जाती, तो वह आत्मा माया-कपट के कारण से लंबा संसार चाहे नहीं भटकती, परंतु चक्षुकशीलता के कारण से तो लंबा संसार भटकती ही।

शीलमुनि यह हकीकत जानते थे, इसलिए उन्होंने सोचा कि “यह लक्ष्मणी साध्वी चाहे माया नहीं करती, परंतु उन्हें चक्षुकशीलता का दोष याद नहीं आ रहा, तो उसके संस्कार उनमें रह जायेंगे। मैं उन्हें उसकी आलोचना करवा दूँ, तो उनके वे संस्कार खत्म हो जाएंगे, तो आनेवाले भवों में वे संस्कार उन्हें नये पाप नहीं करवाएंगे।”

इसलिए शीलमुनि ने याद करवाया, परंतु वे केवली नहीं थे। इसलिए उन्हें पता नहीं था कि “साध्वीजी मेरी बात नहीं स्वीकारेंगे।” इसलिये ही याद करवाया और लक्ष्मणी के सिर पर दो पाप आ गिरे। चक्षुकशीलता के संस्कार नाम का एक पाप और माया-कपट नाम का दूसरा पाप ! और १ लाख भव मुख्य रूप से दूसरे पाप के कारण से भटके। यहला पाप सामान्य था, उसकी अपेक्षा से दूसरा पाप बहुत बड़ा हो गया।

यह पदार्थ गहराई से सोचना जरूरी है... चलो, वापस एकबार चिंतन करते हैं।

- लक्ष्मणा जब दूसरे नाम से आलोचना कर रही थी कि “कोई ऐसा पाप करे, चकला-चकली का मैथुन देखकर खाब विचार करे, तो उन्हें क्या प्रायश्चित्त आएगा ?” तब वो आलोचना करते समय ही माया कर रही थी और प्रभु जानते ही थे कि “लक्ष्मणा साध्वी अभी माया कर रही हैं।”

परंतु प्रभु यह भी जानते थे कि “मैं उसे समझाऊंगा, तो भी वह माया नहीं छोड़ेंगी।” प्रभु केवलज्ञान से भविष्य जानते थे, और इसलिए उन्होंने लक्ष्मणा को कोई उपदेश नहीं दिया, “तू माया छोड़ दे, माया से बहुत पाप का बंध होता है।” आदि कोई भी बात नहीं की...

अब लक्ष्मणी का देखो ! शीलमुनि की प्रेरणा से वह जब आलोचना करती है, तब तो उसे खुद का पाप याद ही नहीं है। इसलिए बाकी के जो-जो पाप थे, उसकी सरल भाव से आलोचना करते हैं, इसतरह आलोचना करते समय लक्ष्मणी के मन में लेश भी माया नहीं थी।

परंतु शीलमुनि को तो पता था कि “चक्षुकृशीलता का पाप उन्होंने सेवन किया है।” और साध्वी ने वह पाप नहीं बताया, इसलिए शीलमुनिने सोचा कि “मैं वह पाप याद करवा दूँ, जिससे आलोचना शुद्धतम हो जाये।”

शीलमुनि अवधिज्ञानी थे, अगर उन्होंने अवधिज्ञान का उपयोग ऐसा होता, तो शायद वे जान भी सकते थे कि “इन्हें मैं याद करवाऊंगा, तो भी वे माननेवाले नहीं हैं, पाप का स्वीकार करनेवाले नहीं हैं...” और ऐसा जानने के बाद तो वे भी याद नहीं करवाते...

परंतु उन्होंने अवधिज्ञान का उपयोग नहीं ऐसा होगा, इसलिए उन्हें इस बात का भी अंदाज नहीं आया, और इसलिए ही उन्होंने साध्वीजी को पाप याद करवाया, परंतु वह बात साध्वीजी स्वीकार नहीं सके, अब साध्वीजी के मन में माया नाम का पाप उत्पन्न हुआ।

अगर शीलमुनि याद नहीं करवाते, तो माया उत्पन्न नहीं होती... परंतु चक्षुकृशीलता के जो संस्कार आत्मा में एकबार पड़ गये थे, वे खल्म नहीं होते, क्योंकि उस पाप की उन्होंने आलोचना ही नहीं की थी। चाहे, उन्होंने याद नहीं आने से आलोचना नहीं की, परंतु तो भी उसके कारण से उस पाप के संस्कार आत्मा में रहेंगे ही, और आनेवाले भवों में उन्हें बातबार चक्षुकृशीलता के पाप कराएंगे भी सही ! अगर रोग नहीं पकड़ा जाये, तो रोग की दवा नहीं होती, तो वह रोग शरीर को नुकसान करेगा ही। हम ऐसा मानेंगे कि “हम हमारे रोग को जान नहीं सके, तो हमारी भूल क्या ? हमें किसलिये रोग के नुकसान होंगे ? रोग को जानने के बाद हमने दवा नहीं करवाई हो, तो रोग हमें नुकसान पहुँचाएगा...” तो चलेगा ?

इसतरह ऐसा हम मानते हैं कि “मुझे मेरा पाप याद नहीं आया, इसलिये मैंने उस पाप की आलोचना नहीं की, उसका प्रायश्चित्त नहीं किया, तो इसमें मेरी भूल नहीं है, इसलिये उस पाप का फल मुझे नहीं मिलना चाहिए...” तो वह किस तरह चलेगा ? अगर पाप याद नहीं आने से आलोचनादि नहीं की, तो पापसंस्कार नाश नहीं होंगे, तो वे पाप संस्कार वापस वापस पाप उत्पन्न करवाकर लंबा संसार भटकाने लगे फल देंगे ही...

इसलिए, पाप याद नहीं आने से आलोचना नहीं करते, तो मायापाप से

तो बचते हैं, परंतु यापों के संस्कार खत्म नहीं होने से यापों की परंपरा चालु रहने की शक्यता पक्षी है।

शायद इस ही कारण से रोज दो-दो बार प्रतिक्रमण है, उसमें भी “देवसिं आलोउ, राइअं आलोउ”, में जो आलोचना करते हैं, उसके पहले साधुओं को “सयणा” का काउँसग्ग है और श्रावको को “नाणंभि” का काउँसग्ग है। उसमें उन्हें अतिचार याद करने हैं। वे अतिचार बराबर याद करने के बाद उनकी आलोचना करती है... यदि पंद्रह दिन में एकबार प्रतिक्रमण होता, तो आराधक चाहे माया नहीं भी करते, परंतु पंद्रह दिन के पाप एक साथ याद नहीं आते, इसलिए वे याद नहीं आने के कारण से आलोचना में वे पाप स्वीकारने रह जाते हैं, तो उनका प्रायश्चित्त रह जाता है, तो उन यापों के संस्कार भी रह जाते हैं... तो बारबार पाप होते रहेंगे, तो संसार का नाश कहाँ से होगा ? कितनी सुंदर व्यवस्था अपने वहाँ है...

दिन में अनेकबार इरियावहि की जाती है, वह इसलिये ही कि छोटी भी हिंसा हो जाये, तो वह तब तो याद ही होती है, इसलिए तब ही इरियावहिया करे, तो वे पाप याद होने से आलोचनादि बराबर होती है। उसके संस्कार नहीं रहेंगे, तो पुनः पुनः पाप नहीं होंगे, तो मोक्ष जल्दी होगा।

शाम को प्रतिक्रमण करते हैं, तो दिन के बारह घटे के यापों को ही याद करने के होते हैं। वे ताजे होने से याद रह सकते हैं और व्यवस्थित आलोचनादि हो सकती है। वैसे सुबह प्रतिक्रमण करते हैं, तो शत के बारह घटे के यापों को ही याद करना होता है, वे ताजे ही होने से याद रह सकते हैं, और व्यवस्थित आलोचनादि हो सकती है।

ऐसा पंद्रह दिन करना, उसके बाद वापस एक *Chance* पक्षिख प्रतिक्रमण का ! पंद्रह दिन रोज दो बार प्रतिक्रमण किया ही है, सुबह-शाम के पाप याद कर-करके आलोचनादि की ही है, परंतु फिर भी कोई पाप याद नहीं आये हो, तो पंद्रह दिन में वापस एकबार मेहनत करो। उस दिन देवसिं अ प्रतिक्रमण तो है ही, परंतु उसके साथ पक्षिख प्रतिक्रमण भी है और उसमें पंद्रह के पंद्रह दिन के यापों को याद करना है। उनमें भी जो पहले याद नहीं आये हो... उन्हें खास याद करना है।

इसतरह, हर पंद्रह-पंद्रह दिन करते जाना और अंत में चार महिने हो,

तब चातुर्मासिक प्रतिक्रमण है। शायद अंतिम चार महीने के दौरान शाइ-देवसी-पक्षिख में भी रात के - दिन के - १५ दिन के पाप याद करते-करते भी कोई पाप याद नहीं आये हो, तो चौमासी प्रतिक्रमण में इन चार महीने में याद नहीं आये हुए पापों को याद कर-करके आलोचनादि करना...

इसतरह तीन चौमासी करने के बाद अंत में संवत्सरी प्रतिक्रमण आया। रोज शाइ. देवसी. किये, पंद्रह-पंद्रह दिन में पक्षिख किया, चार-चार महीने में चौमासी किए... और उसमें भी कोई-कोई पाप याद नहीं आये हो, तो संवत्सरी प्रतिक्रमण में पूरे वर्ष के याद नहीं आये हुए, बाकी रहे हुए पापों की आलोचना कर लेनी होती है...

परंतु बारबार प्रतिक्रमण जो बताया है वह बताता है कि माया नहीं होती, उतने मात्र से आत्मकल्याण नहीं है। अज्ञान-अनाभोग-अनुपयोग भी आत्मा को नुकसान पहुँचा सकता है।

शास्त्रकारों ने दो वचन कहे हैं।

- सोष्टी उज्जुयभूअस्स : जो सरल है, उसकी शुद्धि है।

यानि कि माया के त्याग से आत्मा की शुद्धि है।

- स्मृतिस्मूलं धर्मानुष्ठानम् : धर्मानुष्ठान का मूल स्मरण है।

यानि कि अस्मरण के = अज्ञान के = अनुपयोग के त्याग से धर्मानुष्ठान सच्चा बनता है।

ये दोनों वचन दर्शाते हैं कि माया + अज्ञान दोनों दूर करना अत्यंत जल्दी है। अज्ञान दो कारण से होता है - (१) प्रमाद के कारण से (२) छग्गस्थता के कारण से...

पापों को याद करने की मेहनत नहीं करे, रोज-रोज दो बार पाप याद करने के बदले पंद्रह दिन से, महीने से, चार महीने से एकादशबार पापों को याद करें... उसमें भी विशेष मेहनत नहीं करें... तो उसके कारण से बहुत सारे पाप याद नहीं आये, और इसलिए आलोचनादि नहीं हो।

यह जो पापों का अज्ञान = अस्मरण है, वह प्रमादजन्य है... यह भारी नुकसान कर सकता है।

जो आत्मा रोज-रोज दो वर्षमें के प्रतिक्रमण में पापों को बशबर याद करने की मेहनत करती है। उसी तरह पंद्रह दिन में, चार महीने में, साल में

भी हरेक प्रतिक्रमण में खुद के पापों को धोने के लिये जबरदस्त मेहनत करती है... उसके बावजूद कोई कोई पाप याद नहीं आये, तो यह अस्मरण = अज्ञान छात्तथता के कारण से है। यह आत्मा केवलज्ञानी नहीं है, इसलिए उसे ऐसा अस्मरण होने की पक्षी अभावना है ही।

यह जो छात्तथताजन्य अस्मरण है, उसमें दो विकल्प है - (१) आत्मा अंदर माया कपट की योग्यतावाली हो... (२) आत्मा अंदर सरलता की योग्यतावाली हो...

ऋक्षिणी जब आलोचना करती है, तब उसे छात्तथता के कारण से चक्षुकशीलता का पाप याद नहीं आता। उसमें उसका कोई प्रमाद नहीं था। शीलमुनि ने पूछा और उस साध्वीजीने खुद के सभी पापों को बोल दिया, परंतु वह पाप तो याद ही नहीं आया। परंतु उस साध्वीजी की आत्मा अंदर से माया-कपट की योग्यतावाली थी। यानि कि उस समय माया उपयोग में नहीं थी, परंतु माया की योग्यता उनमें पड़ी हुई थी। वह किस तरह पता चला? जब शीलमुनि ने याद करवाया वह पाप, तब माया प्रगट हुई। जो अंदर योग्यता के रूप में पड़ हुआ हो, वह ही उपयोग रूप से बाहर आता है ना।

यानि उनका पापों का अज्ञान = अस्मरण वह माया-कपट की योग्यतावाला था, यह पक्षा हुआ और ऐसा अज्ञान जीव को नुकसान करता ही है।

यह तो शीलमुनि ने याद करवाया और साध्वी की माया बाहर प्रगट हुई। बाकी मानो कि शीलमुनि ने याद नहीं करवाया होता, तो भी साध्वी में रही हुई माया की योग्यता उन्हें नुकसान करती ही.. यह अभावना बहुत-बहुत-बहुत ज्यादा है।

अर्द्धमुत्ता मुनि जब पानी में पात्री तैराते हैं, तब “यह पाप है।” ऐसा उपयोग नहीं है। इसलिए अज्ञान है, परंतु स्थविर याद करवाते हैं, तो तुरंत पाप का स्वीकार है, माया नहीं है... इसतरह किसी आत्मा को आलोचना के समय पाप याद नहीं आये, पूरी की पूरी मेहनत करने के बावजूद याद नहीं आये, तो भी अगर उस समय गुरु उसे उसका पाप याद करवाये, तो तुरंत स्वीकार ले... इसका अर्थ ही ये है कि उनमें सरलता की योग्यता पड़ी है, इसलिए ही गुरु के कहने से तुरंत ही वह सरलता उपयोग रूप से बाहर आ गई।

ऐसे जीव को गुरु पाप याद नहीं करवाये, तो भी सरलता की योग्यता

होने के कारण उसे इवपाप का अज्ञान आदि प्रायः नुकसान नहीं करता ।

ये सभी पदार्थ अत्यंत गहन हैं । ऐसा होता है कि इसके ऊपर तो बहुत-बहुत विस्तार से लिख सकुं वैसा है । परंतु यह पुस्तक लोकभोग्य बने, उसके लिये बहुत कठिन पदार्थ अभी ते नहीं रहा हूँ, किर भी सार ले लेता हूँ ।

सार :

(१) प्रमाद के कारण से पाप याद नहीं आये, और उस आत्मा में माया करने की योग्यता भी यड़ी हो... और इसलिये गुरु उसे पाप याद करवाये, किर भी नहीं स्वीकार करें... तो उसे सबसे भयंकर नुकसान हो सकता है ।

(२) प्रमाद के कारण से पाप याद नहीं आये + माया की योग्यता हो + गुर्वादि किसी ने उसे पाप याद करवाया नहीं, इसलिए आलोचनादि की नहीं, माया उपयोग में नहीं आई, इसलिए माया का पाप तीव्र बनने का अवसर नहीं आया...

इस जीव को भी नुकसान हो सकता है, क्योंकि माया की योग्यता + प्रमाद आदि है । परंतु नं.१ से कम नुकसान होता है ।

(३) प्रमाद के कारण से पाप याद नहीं आये + सरलता की योग्यता हो + गुर्वादि याद करवाये, तो तुरंत स्वीकार कर आलोचनादि कर ले । सरलता उपयोग में भी आ गई । माया सत्ता या उपयोग में नहीं है ।

यह जीव को लाभ है... क्योंकि अंत में शुद्ध आलोचना की है । परंतु प्रमाद के संस्कार अगर भविष्य में चालु रहे, तो भविष्य में नुकसान हो भी सकता है ।

(४) प्रमाद के कारण से पाप याद नहीं आये + सरलता की योग्यता हो + गुर्वादि कोई उसे पाप याद नहीं करवाये, इसलिए सरलता बाहर नहीं प्रगटती + पापों की आलोचनादि नहीं होने से उसके संस्कार भी अंदर बाकी रह जाते हैं...

इस जीव को भविष्य में नुकसान की शक्यता है सही...

क्योंकि प्रमाद चालु रहेगा, तो भविष्य में भी याद नहीं आना आदि कारण से आलोचना आदि नहीं हो तो खुद के संस्कार अंदर बाकी रह गये होने से भविष्य में बारबार पाप होने की संभावना रहेगी ही । इसलिए सरलता की योग्यता होने के बावजूद लंबा संसार भी हो सकता है ।

(५) छात्वारिंशी के कारण से पाप याद नहीं आते (यानि कि पाप याद करने की पूरी मेहनत की ही है, शास्त्रीय विधि के अनुसार पूरी मेहनत की ही है... परंतु तो भी पाप याद आये नहीं है ।) + अंदर माया की योग्यता पड़ी है + गुरु याद करवाते हैं + और माया बाहर प्रगटी है... इसलिये आलोचना आदि होती नहीं है ।

इस जीव को नुकसान की संभावना बहुत है ही ।

ऋक्षिणी साध्वीजी इस कक्षा में है ।

(६) छात्वारिंशी के कारण से पाप याद नहीं आये + अंदर माया की योग्यता है + गुर्वादि ने पाप याद नहीं करवाये + इसलिए शुद्ध आलोचना आदि नहीं हो ।

इस जीव को माया की योग्यता + पापों के संस्कार इन दो के कारण से भविष्य में नुकसान होने की संभावना बहुत है ।

(७) छात्वारिंशी के कारण से पाप याद नहीं आये + अंदर सरलता की योग्यता है + गुर्वादि ने पाप याद करवाये + इसलिए शुद्ध-आलोचना आदि भी हो गये ।

यह जीव शीघ्र मुक्ति पाता है, क्योंकि सरलता उपयोग में भी आ गई है, पाप संस्कार भी नाश हो गये है । गुर्वादिने याद करा दिये है, उससे छात्वारिंशी से हुए अज्ञान भी निकल गया । बहुत उत्तमोत्तम है यह आत्मा ।

(८) छात्वारिंशी के कारण से पाप याद नहीं आये + अंदर सरलता की योग्यता है + गुर्वादिने पाप याद नहीं करवाये + इसलिए पापों की आलोचना आदि नहीं हुई ।

इस जीव को प्रायः तो नुकसान नहीं होता, परंतु पापों के संस्कार बाकी रहने से भविष्य में वापस-वापस पाप हो सकते हैं । उस समय हालाँकि सरलता की योग्यता होने के कारण से किसी के कहने से पाप स्वीकार भी ले, परंतु भविष्य का क्या पता चलता है ? इसलिये कभी नुकसान की भी संभावना रहती है ।

(९) पाप याद आये + माया की योग्यता है + इसलिये पापों का स्वीकार नहीं है + इसलिये माया का उपयोग भी है + गुर्वादि भी पाप याद नहीं करवाये... वह आत्मा अतिभयंकर नुकसान पाती है ।

लक्षणा साध्वीजी इसमें आती हैं ।

(१०) पाप याद आये + माया की योग्यता है + इसलिये पापों का स्वीकार नहीं है + गुर्वादि पाप याद करवाते हैं तो भी पापों का स्वीकार नहीं है, इसलिए माया अतिस्पष्ट रूप से उपयोग में है ।

यह आत्मा अतिभयंकर नुकसान पाती है ।

अपेक्षा से इसमें गोशाला आता है ।

प्रभु ने उसे कहा कि “तू तीर्थकर नहीं है, सर्वज्ञ नहीं है, तू मृषावादी है ।”

गोशाले को पता है कि “मैं मृषावादी हूँ ।”

गोशाले को अंदर माया भरपूर है ही, इसलिये ही विश्व को झूठ बोलकर ठगता है ।

प्रभु याद करवाते हैं, तो भी गोशाला स्वीकारता नहीं है । ज्यादा झूठ बोलता हैं कि “वह गोशाला तो मर गया है, मैंने उसके इस हृष-पृष्ठ शरीर में प्रवेश किया है ।”

अनंत संसार बढ़ा है गोशाले का ।

गोशाला अनंतसंसार पाता है...

लक्षणा ८० चौबीसी का संसार पाती है...

यह जो फर्क है, उसमें ऊपर की बाबतों को खास-विशेष करके सोच सकते हैं ।

और भी गहराई से सोचेंगे, तो रहस्य का महासागर इसमें छुपा हुआ ही है, वह देखने मिलेगा, परंतु वह काम अब आप सभी करना । सिर्फ वांचन करके आगे मत बढ़ जाना । कहीं अटकना... सोचना... भावित होना...

शीलमुनि ने तो साध्वीजी के हित के लिये पूरी मेहनत की, और वे छन्दस्थ होने से ऋक्मिणी की मायायोग्यता को नहीं जानने के कारण से ऐसी मेहनत करे, वह भी एकदम योग्य ही है...

प्र२न्-19

(१९) जिज्ञासा : संलेखना यानि क्या ?

समाधान : अनशन यानि मृत्यु नहीं हो तब तक चारों आहार का त्याग !

परंतु उसमें असमाधि नहीं हो, प्रसन्नता-समाधि अंत तक रहे, उसके लिये प्रेक्षित करने में आती है, वह प्रेक्षित यानि संलेखना ! वह उत्कृष्ट से १२ साल की होती है। उसमें शास्त्र में बताई हुई विधि के अनुसार विविध तप के द्वारा शरीर को एकदम पतला, मांस-चर्बी-खून बिना का बना दिया जाता है, और उसके कारण मरते समय विशेष पीड़ा नहीं होती, जीव सहज ढंग से देहत्याग कर सकता है...

इसका विस्तार से वर्णन अन्य ग्रन्थों में से जान लेना ।

प्र२न्-20

(२०) जिज्ञासा : पादपोपगमन अनशन यानि क्या ?

अमाधान : अनशन यानि चार आहार का संपूर्ण त्याग ! जब तक मृत्यु नहीं आये, तब तक ! उसमें अगर ऐसा भी नियम लेने में आये कि पादप = वृक्ष की तरह ही उपगमन = रहना । यानि कि जैसे वृक्ष स्वयं हलन-चलन नहीं करता, परंतु पवनादि से हलन-चलन करता है, वैसे इस अनशन में मुनि स्वयं लेश भी हलन-चलन नहीं करता, उंगली भी नहीं हिलाता, परंतु किसी के धक्के आदि से शरीर हिले ऐसा हो भी सकता है । इस तरह मृत्यु तक जिस अनशन में रहने में आये, वह पादपोपगमन अनशन है ।

कुल तीन अनशन है - भक्तपरिज्ञा, इंगिनी, पादपोपगमन...

इन सभी का भी विस्तार से वर्णन अन्य ग्रन्थों में से जान लेना ।



प्र४८-21

(२१) जिज्ञासा : गौतमङ्गामीने जो प्रश्न पूछ है कि “चारित्रवान आत्मा तो उत्कृष्ट से सात-आठ भव में मोक्ष में जाते हैं, तो ऋक्विणी के १ लाख भव क्यों ?” यह प्रश्न समझ में नहीं आता ।

कारण ये है कि चारित्रवान आत्मा सात-आठ भव में मोक्ष में जाता है, यह जो बात है, वह आमान्य सात-आठ भवों के लिये नहीं है । वह तो चारित्रवाले ऐसे ७-८ भव के लिये बात है । ऋक्विणी का तो चारित्रवाला एक ही भव हुआ है । उसके बाद गच्छाधिपतिपदवाला १ लाखवां भव ! और अंतिम १ लाख + २ नंबर का भव गोविंद ब्राह्मणी का ! ये तीन ही भव चारित्रवाले हैं । इसलिये ऐसा

प्रश्न ही अमज्जा में नहीं आता । चारित्रवाला ९-१० भव हुए हो, और ऐसा प्रश्न पूछने में आये, तो बशबर है ।

समाधान : पहले यह देख लेते हैं कि सच्ची हकीकत क्या है ?

(१) मनुष्यभव में एक सैकंड के लिए भी अगर छटा गुणस्थान का स्पर्श हो जाये, तो वह भव १ चारित्र भव गिन सकते हैं... ऐसे उत्कृष्ट से ८ ही चारित्रभव होते हैं । हा ! बीच-बीच में चारित्र के स्पर्श बिना के भव लाखों-करोड़ों या अनंता भी होते हैं, यह बात अलग है । परंतु चारित्र के = ६th गुणस्थान के स्पर्शवाले भव तो आठ ही होते हैं ।

(२) ये भव ऐसे हैं कि एकबार चारित्रस्पर्श करने के बाद आत्मा चारित्रभ्रष्ट हो जाये, तो भी ये भव गिन सकते हैं । यानि कि अतिचारवाले - अनाचारवाले ऐसे चारित्र के भव भी इन आठ भव में गिन सकते हैं और अतिचार बिना के चारित्रभव तो ले ही सकते हैं ।

(३) फक्त ये पढ़ता है कि झ़अतिचारवाले चारित्रभव जल्दी जल्दी नहीं मिलते, उसमें बीच-बीच में अन्यभव ज्यादा हो सकते हैं । जबकि अतिचारहीरह चारित्रभव जल्दी जल्दी मिल जाते हैं । बीच में एक देवभव, फिर तुरंत चारित्र ! वापस देव, वापस चारित्रभव !

१७ तिर्थकरों के ३ भव हैं । उसमें प्रथमभव निरतिचार चारित्र का ! फिर देवभव ! फिर वापस निरतिचार चारित्रभव और नोक्ष !

गुणसेन के नौ भव देखो, तो लगातार निरतिचार चारित्र + देवभव... इस तरह है !

परंतु महावीर ने मरिचिभव में चारित्र में अतिचार-अनाचार लगाये, इसलिए उन्हें दूसरा चारित्र भव सीधा सोलहवें भव में मिला । उसमें वापस नियाणा करके अतिचार-अनाचार लगाया, इसलिए तीसरा चारित्रभव त्रेवीश वें भव में मिला । वह निरतिचार चारित्रभव था, इसलिए चौकीसवें देवभव के बाद तुरंत पांचवां भव चौथा चारित्रभव हुआ, वह भी निरतिचार था, इसलिए छबीशवां देवभव और फिर सत्यार्दीस वां भव वापस निरतिचार चारित्रभव मिला... यानि कि पांचवां चारित्रभव !

इसतरह, प्रभुवीर को दो चारित्रभव अतिचारवाले मिले और तीन चारित्रभव निरतिचार मिले । अतिचारवाले चारित्रभव के बाद बहुत यारे भव लेने

पड़े और निरतिचार चारित्र भवों के बाद एक-एक ही देवभव लेना पड़ ?

आर : चारित्र के ज्यादा से ज्यादा भव आठ ही होते हैं । किर वह चारित्र अतिचारवाला हो या अतिचारहित हो । परंतु अगर अतिचारदिवाला चारित्र हो, तो बीच के भव बहुत सारे हो सकते हैं और अगर अतिचारहित चारित्र हो, तो बीच में एक-एक ही भव होता है...

इसलिए अतिचारयुक्त चारित्रवालाओं का अनंतसंयम भी हो सकता है, क्योंकि बीच में अनंतभव हो सकते हैं । हा ! चारित्रवाला भव तो उत्कृष्ट से भी आठ ही !

और अतिचारहित चारित्रवालों के बीच के ७ देवभव लो, तो उत्कृष्ट से १५ भव में मोक्ष हो सकता है । (जघन्य से तो उस ही भव में भी मोक्ष में जा सकते हैं ।)

(४) श्री भगवती आगम + श्रीमहानिशीथ आगम ऐसा कहते हैं कि “अविशाधितसंयम वाले ही आठ भव लेना ।”

अविशाधित संयम यानि क्या ? इसके दो अर्थ हैं ।

👑 दीक्षा लेते हैं । ६th गुणस्थान पाते हैं, उसके बाद मृत्यु तक एकबार भी ६th से नीचे नहीं गिरते । ६th में ही अतिचार लगे, तो वह चलता है... अविशाधित संयम ही गिना जाता है ।

👑 मानो कि ६th से गिरे, तो भी वह आलोचनादि करके वापस ६th पर आ जाए, तो भी वह अविशाधितसंयम ही गिना जाता है ।

आर : मृत्यु के समय ६th गुणस्थान जिसे होता है, वह अविशाधितसंयम ! निरतिचार संयम ! ऐसे भव उत्कृष्ट से आठ ही होते हैं...

(५) इसतरह देखे तो दो मत हैं - (A) मृत्यु के समय संयम = ६th गुणस्थान नहीं हो, तो भी चलता है । बस, इतना चाहिए कि पूरे भव में एकाद ऐकंड के लिये भी ६th पाया हो । ऐसे भव भी उत्कृष्ट से आठ ही होते हैं । (B) मृत्यु के समय ६th गुणस्थान नहीं हो, परंतु जीवन में ६th पाया हो, ऐसे भव तो अनेक हो सकते हैं, वे आठ से ज्यादा भी होते हैं । परंतु मृत्यु के समय ६th हो, तो ऐसे भव तो ज्यादा से ज्यादा आठ ही होते हैं ।

(६) श्री भगवती - श्री महानिशीथ आगम B मत के अनुसार है, परंतु

श्री आवश्यकनिर्युक्ति का मत (**A**) मत के अनुसार लगता है। वहाँ कोई विशदित - अविशदित भेद रखा नहीं है।

इसमें अगर एकाद भी उदाहरण ऐसा मिले कि जिसमें उस आत्मा ने नौ-दस भवों में 6^{th} गुणस्थान की प्राप्ति की हो, तो तो *Fix* हो जाता है कि (**B**) मत ही सच्चा है, परंतु अभी तक मेरे ध्यान में ऐसा कोई उदाहरण आया नहीं है।

(७) **श्री आवश्यकनिर्युक्ति** में सम्यक्तु + देशविरति + चारित्र ऐसे तीनों के उत्कृष्ट भव बताये हैं। उसमें सम्यक्तु के भव बड़ा असंख्य, देशविरति के भव छोटा असंख्य और चारित्र के भव आठ... ऐसे बताया है।

अगर चारित्र के आठ भव अविशदित = मृत्यु के समय चारित्र-वाले लेते हो, तो सम्यक्तु + देशविरति के भव भी अविशदित = मृत्यु के समय सम्यक्तुवाले, देशविरतिवाले ही लेने चाहिए।

(८) अगर अविशदित चारित्र के ही आठ भव हो, तो विशदित चारित्र के भव कितने ? वह तो कहीं दर्शाया नहीं है। यह बताना चाहिए कि “विशदित चारित्र के संख्यात या असंख्यात भव हो सकते हैं...” परंतु ऐसा तो कहीं बताया नहीं है...

(९) इसलिये इसमें तत्त्व क्या ? वह तो ज्ञानी जाने।

हम अभी महानिशीथ के पाठ का विचार करते हैं।

गौतमस्वामी पूछते हैं कि, “चारित्रवाले के आठ ही भव होते हैं, तो ऋक्मिणी के लाख भव क्यों ?” अगर वे “चारित्रयुक्त ऐसे आठ भव ही होते हैं।” ऐसा समझकर पूछते हो, तो प्रभु उत्तर ऐसा देंगे कि “गौतम ! उसके चारित्रयुक्त भव तीन ही हुए हैं। आठ नहीं हुए, बाकी के भव तो बहुत हो सकते हैं।”

अगर गौतमस्वामी ऐसा समझकर पूछते हो कि “एकबार कोई आत्मा चारित्र प्राप्त कर लें, उसके बाद वह आत्मा उस भव से लेकर कुल आठ भव में मोक्ष चली ही जाती है... उन आठ भवों में चारित्रयुक्त भव या + चारित्रहीन भव... कोई भी आ जाते हैं।”

तो प्रभु का उत्तर बशबर है कि “गौतम ! ऋक्मिणी का चारित्र भव तो है, परंतु अविशदित नहीं है, विशदित संयम है, मरते समय संयम का नाश है... इसलिये यह आत्मा आठ भव में जाये, ऐसा नियम नहीं है...”

इसलिए ऐसे देखो तो, तीन बातें हुईं ।

(१) विशद्धित संयम से युक्त या अविशद्धित संयम से युक्त आठ ही भव होते हैं । बीच-बीच में कितने भी भव हो सकते हैं ।

(२) अविशद्धितसंयम से युक्त आठ ही भव होते हैं । बीच-बीच में देवादिभव हो सकते हैं, विशद्धित-संयम कितने होते हैं ? उसकी कोई चर्चा नहीं है ।

(३) मृत्यु के समय संयम में, ऐसा जो भव वह अविशद्धित संयम । ऐसा एक भव आता है, इसलिए बाद में वहाँ से लेकर ज्यादा से ज्यादा २-३-४-५-६-७ और ८वें भव में मोक्ष ही होता है । उसके बीच के भव चाहे कोई भी हो, वे सभी इन आठ भव में गिनने ही हैं ।

अब यह जो तीसरा अर्थ है, उसके लिये यह देखना पड़ेगा कि “कोई उदाहरण ऐसा है कि “जिसमें आत्मा छ्टे पर मरा, और उसके बाद आठ से ज्यादा भव उसने किये हो । ” अगर ऐसा मिले तो तीसरा अर्थ बरबर नहीं बैठता...

ज्ञानी इस बाबत में शांति से विचार करें ।

यहाँ शास्त्रपाठ भी लिख देता हूँ ।

॥
प्रब्रज्याकालादारभ्याभग्नचारित्रपरिणामानां, संज्वलनकषायसामर्थ्यात् प्रमत्-
गुणस्थानकसामर्थ्याद् वा स्वल्पमायादिदोषसम्भवेऽपि अनाचरितचरणोपघातानाम् इत्यर्थः ।
श्री भगवतीसूत्रवृत्तिः ३ शतक, २ उद्देश, सूत्र-२५.

॥
विशद्धितः = सर्वात्मना खण्डितः, न पुनः प्रायश्चित्तप्रतिपत्या भूयः सन्धितः
संयमः यैः, ते विशद्धितसंयमाः ॥ श्रीप्रज्ञापनावृत्तिः २० मुं अन्तक्रियापद सूत्र-२६५.

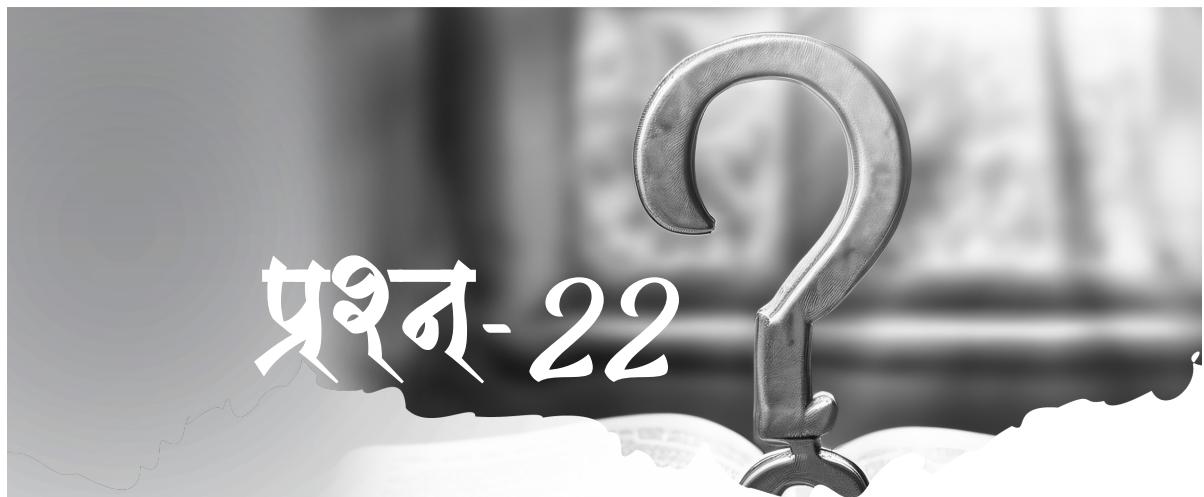
॥
“अदृभवा उ चरिते” अत एवाघचारित्रे सिद्धेरावश्यकत्वात्, प्रब्रज्याया
विशिष्टजीजत्वात् श्रीमहावीरेण सा दापिता, अन्यथा तद्वानं निरर्थकं स्यात्, सम्यक्त्वात्रेणैव
बीजमात्रस्य सिद्धत्वात् ।...

कथं तहि गोशालकस्य चारित्रप्रतिपतिभवा विशद्धनायुक्ता दश, तदयुक्ताश्चार्थै
इत्यष्टदश ? इति चेत् ? विशद्धनायुक्तेषु भवेषु तस्य द्रव्यचारित्रस्यैव सम्भवादिति वदन्ति
॥ गुरुतत्त्वविनिश्चयः गा.१४८

अन्ये त्वाहुः- “अदृ भवा उ चरिते” इत्यत्र अविशद्धनाभवा एव ग्राह्णाः,
अविशद्धना च दीक्षाप्रतिपतिमारभ्यानतिचारतया आमरणपालनम् । न च वृत्तिकारेण

आदानभवानामेव व्याख्यानातदवष्टभीनैव सूर्वं व्याख्येयम् । आवश्यकचूर्णिकारेणाऽपि
आराधनापक्षस्य समर्थितत्वादित्याहुः ॥गा.३४८॥

यहाँ दो मत बताये हैं । पहला मत ये ही है कि ६th का एक पल के लिये भी स्पर्श हो, तो वह भव गिन लेना । इसलिए ही गोशाले के १८ चाटित्रभव में १० चाटित्रभव द्रव्यचारित्र ही गिने, क्योंकि अगर भावचारित्र ले, तो उसके तो ८ ही होते हैं ना ! दूसरा मत कहता है कि अविराधनाभव ८ हुए, ऐसे लेना । गोशाले के १८ भव भावचारित्रवाले हो, तो भी १० भवों में चारित्र की विराधना (= नाश) की, इसलिए अविराधना भव तो ८ ही होते हैं ।



(२२) जिज्ञासा : गोविंद पत्नी के उपदेश से अनेक लोग प्रतिबोधित हुए,
परंतु ग्वालिन और भूर्यश्री को कुछ असर नहीं हुई, ऐसा क्यों ?

समाधान : जीवों की पात्रता । तीर्थकरों का उपदेश भी गोशाला आदि अपात्रों को असर नहीं कर सका, तो गोविंदपत्नी के उपदेश से अपात्रों को असर नहीं हो, इसमें कोई आश्वर्य नहीं है ।

प्र१८-23

(२३) जिज्ञासा : सूर्यशिव खुद की अग्नि बेटी को पहचान नहीं सका, यह तो किस तरह हो सकता है ?

समाधान : (१) सूर्यश्री यौवन पा रही थी, उस उम्र में सूर्यशिव ने उसे बेचा था । इस उम्र में शरीर में बहुत बदलाव आते हैं ।

(२) लगभग पांच साल के बाद वह सूर्यश्री को मिला है ।

(३) सात साल के अकाल में सुखी हुई सूर्यश्री को उसने बेचा था । उस समय उसका गठन-दिखावा अलग ही था, और उसके बाद गोकुल के दर्ही-दूध-घी खाकर तगड़ी बनी हुई सूर्यश्री का दिखावा-गठन अलग ही था... यह बात एकदम सहज ही है... इसलिये पिता पुत्री को नहीं पहचान सका, यह मान सकते हैं ।

बाकी नियति-भवितव्यता तो है ही...

प्र१८-24

(२४) जिज्ञासा : महापापी भूर्यशिव उस ही भव में मोक्ष में गया, और सूर्यश्री संसार में भटकी, ऐसा क्यों ?

समाधान : हरेक जीव का तथाभव्यत्व ही इसमें काम करता है। भूर्यशिव का तथाभव्यत्व बहुत अच्छा था, इसलिए उसने इतने पाप किये उसके बावजूद भी वह उस ही भव में मोक्ष में गया।

स्थिर बाहर के पापों के आधार से कोई निर्णय नहीं होते, जीव की अंदर की योग्यता = पात्रता वह ही सबसे महत्व का भाग अदा करती है।



(२५) जिज्ञासा : सुझाने पश्चात्ताप, आलोचना, प्रायश्चित्त आदि किये, फिर भी उसका लंबा संसार हुआ, क्योंकि उसने जयणा की उपेक्षा की, यह बाबत क्या उपदेश देती है ?

समाधान : संयमी तपादि को महत्व दे, परंतु बट्काय की रक्षा को महत्व नहीं दे, तो वह बहुत बड़ी भूल है।

(१) मानो कि वर्षीतप करे, परंतु बियासणे में आधाकर्मी, मिश्र आदि दोषों का सेवन करे... तो इसमें संयमजयणा का नाश है।

(२) मानो कि तीर्थयात्रादि के लिए लंबे विहार करे, परंतु उसमें अंधेरे में विहार करना, इंसान-साइकल-गाड़ी रखना... इन सभी दोषों का सेवन करना... यह बड़ी अजयणा है।

(३) शास्त्राभ्यास के लिए लाइट आदि का उपयोग करे, वह अजयणा

है...

(४) शत्रुंजयादि की नवाणु करने में भी संयमी अंधकार में यात्रा आदि जो अजयणा करते हैं, उसका लिख्ट बड़ा है ।

(५) वर्धमानतप की बड़ी ओलीओं के लिये आयंबिल खाते की दोषित वस्तुएँ लेना... यह है अजयणा ।

हालाँकि उत्सर्ग-अपवाह के ज्ञाता गीतार्थ कोई छूट दे, तो वह अलग बात है । उसके अलावा तो ये सभी अजयणाएँ सुखद साधु की तरह हमें भी संसार में भटकानेवाली बन सकती हैं ।

गृहस्थों के लिए भी खास सोचने जैसा है कि,

👑 मंदिर बनवाते हैं, परंतु शास्त्रीय जयणा है ?

👑 स्वामिवात्सल्य में १५-२० आइटम रखते हैं, परंतु जयणा सही ?

👑 छ'शी पालित संघ में जयणा सही ?

👑 उपधान की रसोई में जयणा सही ?

👑 नवाणु या चातुर्मास की रसोई में जयणा सही ?

ऐसी तो छोटी-बड़ी हजारों अजयणाएँ हैं...

चतुर्विधसंघ को नम्र विनंति है कि “जयणा चाहक, जयणापालक बन जाये...”

जयणा य धर्मजणणी, जयणा धर्मस्स पालणी चेव ।

तव्वुहिकरी जयणा, एगंतसुहावहा जयणा ॥

- जयणा धर्म को उत्पन्न करती है । जयणा धर्म को पालती है, जयणा धर्म को बढ़ाती है, जयणा एकांत से सुख को साधती है ।

- जयणा यानि ? जहाँ किसी दोष का सेवन करना ही यड़े ऐसा हो, वहाँ कम से कम हिंसा किस तरह हो ? उसके लिए जबरदस्त प्रयत्न... ये ही है जयणा !

जयणा के इन दो अर्थों को सभी आत्मसात करें ।

- माता संतान को जन्म देती है, उसका पालन = रक्षण करती है, उसकी वृद्धि करती है = उसे बड़ा करती है ।

- जयणा चारित्रभाव को जन्म देती है, उसका रक्षण करती है, उसकी वृद्धि करती है, इसलिए वह माता है...



(२६) जिज्ञासा : जयणा का अपने जैनधर्म में इतना महत्व है ?

समाधान : बहुत ही महत्व है, तुझे शास्त्रपाठ भी बताता हूँ...

दसवैकालिक - अजयं चरमाणो उ, पाणभूयाङ्गं हिंसाह ।

बंधइ पावयं कम्मं तं से होइ कड्डयं कलं ॥

अर्थ : जो जीव अजयणापूर्वक चलता है, वह जीवों की हिंसा करता है, पापकर्म को बांधता है, उसे उसका कडवा कल मिलेगा ही।

इस्तरह अजयणापूर्वक खड़ा रहता है, जीवहिंसा करता है, पापकर्म बांधता है, कडवे कल पाता है।

अजयणापूर्वक बैठता है, जीवहिंसा करता है, पापकर्म बांधता है, कडवे कल पाता है।

अजयणापूर्वक खाता है, जीवहिंसा करता है, पापकर्म बांधता है, कडवे कल पाता है।

अजयणापूर्वक बोलता है, जीवहिंसा करता है, पापकर्म बांधता है, कडवे कल पाता है।

और ये ही चलना + खड़े रहना + बैठना + सोना + खाना + बोलना सब अगर जयणापूर्वक करता है, तो जीवहिंसा नहीं करता, पापकर्म नहीं बांधता, कड़वाफल नहीं पाता है।

- जयण का पालन नहीं करे, और जीव नहीं मरे, तो भी पापकर्मबंध होते ही है।

जयण का पालन करे, और जीव मरे, तो भी पापकर्मबंध नहीं ही होता है।

कुल आठ गाथाओं में इस जयण-अजयण की बाते की है दसवैकालिक आगम में !...

प्रश्न-26



(२७) जिज्ञासा : सभी जगह जयण समान होती है ?

समाधान : मैंने यहले ही ये यदार्थ बता ही दिया है, परंतु तुझे समझ में नहीं आया । कोई तकलीफ नहीं, अब सुन...

जब उत्सर्गमार्ग का सेवन करने का होता है, यानि कि लेश भी दोष लगाने का कोई कारण ही नहीं हो, तब षट्काय की संपूर्ण रक्षा करना, लेश भी दोष नहीं लगने देना यह उत्सर्गजयण।

जब ऐसे कोई कारण आ पड़े हो, जिसके कारण दोष सेवन करना पड़ता हो, तब जिस छोटे से छोटे दोष के सेवन से चल जाता हो, उस ही दोष का सेवन करना, उससे ऊपर के दोष का सेवन नहीं करना । इस तरह अधिकदोष का

त्याग ही अपवाद जयणा है !

उदाहरण :

(१) विहार C-१० कि.मी. का ही है, तो प्रकाश में ही विहार करना, नीचे देखकर चलना... यहाँ दोष के सेवन करने की ज़रूरत नहीं है... इसलिए ही यह उत्सर्गजयणा !

परंतु शास्त्रे में १०-१२ कि.मी. पर गोचरी-उपाश्रयवाला कोई स्थान नहीं है, इसलिये २० कि.मी. जाना पड़ता हो, उसके लिए अंधेरे में विहार करना पड़े ऐसे हो... परंतु वह अगर सुबह पांच बजे करे, तो चल जाये ऐसा हो, तो चार बजे नहीं करना... चार बजे करो तो दो घंटे अंधेरे में... और पांच बजे करो, तो एक घंटे अंधेरे में...

यहाँ पांच बजे विहार ये अपवादजयणा है !

(२) शरीर स्वस्थ है, तो रोज एकासणा करना ये उत्सर्गजयणा !

बिमारी के कारण सुबह गोली लेनी पड़े ऐसा हो, तो सिर्फ गोली ही लेनी, वापरना (खाना) नहीं... चलो, गोली गर्म पड़ती हो, उसके साथ कुछ लेना (खाना) पड़े ऐसा हो, तो सिर्फ दूध ही लेना, वह भी फिक्का ! शक्तिवाला नहीं, बादाम-केसर-दूध नहीं... गरम नास्ता नहीं, खाखरा आदि नहीं... यह सब जो आचरण है वह अपवादजयणा !

(३) लगभग हरेक जगह घड़ी होती ही है, तो खुद के सामने घड़ी नहीं रखना, संघ की घड़ी से समय छ्याल आ जाता है... यह है उत्सर्गजयणा !

300 कि.मी. विहार करना है, शास्त्रे में स्कुल आदि में शत को उतरे, तो वहाँ घड़ी नहीं भी मिले, तो सुबह उठने आदि में प्रोब्लम होती है... उस समय अगर घड़ी रखनी ही पड़े, तो एकदम छोटी चाबीवाली ही घड़ी रखनी । वह भी जब जहाँ ज़रूरत पड़े, वहाँ ही उपयोग में लेना, वह भी हमेशा नहीं । सेलवाली उपयोग में नहीं लेना । वह लगातार चलेगी, उसमें अश्विकाय और काटे घुमने से वायुकाय की विराधना हमेशा होती है । चाबीवाली में अश्वि हिंसा नहीं है,

वायुहिंसा भी जितने टाईम घड़ी चालू रखी, उतना टाइम ही है ।

इसीतरह, नीचे के हॉल में "Watch" हो, हम ऊपर के हॉल में उतरे हैं । दिन में अनेकबार घड़ी देखने की ज़रूरत पड़ती हो, तो ऊपर एकदम नई घड़ी नहीं रखना, परंतु किसी के घर में जो घड़ी दिवार पर चालू ही हो, और उन्हें

सिर्फ शोभा रूप हो, विशेष उपयोग नहीं हो, तो वह लाकर ऊपर के होल में रख सकते हैं, फिर विहार के समय वापस दे सकते हैं।

अगर उस घड़ी में कांट बड़ा हो + सेलवाली हो, तो उसकी जगह छेटे कोटिवाली + चाबीवाली ही घड़ी रखना... ये है अपवादजयण।

(४) मलेरिया आदि में नारियलपानी पीना पड़े ऐसा हो, तब डॉक्टर को पूछ लेना कि अगर नारियलपानी बनाने का अच्छी कंपनी का पावड़र हो, वह अगर डॉक्टर हाँ कहे, तो वह ही उपयोग में लेना। इसमें क्रीत-स्थापना दोष लगता है, परंतु आधाकर्म दोष नहीं ही लगता। और अगर घरों में या मेंढ़ीकल की भावुक इंसान की दुकान में वह पाउडर लेने जाओ, तो तो वह खुशी-खुशी वहोशायेगा, उसमें तो क्रीत दोष भी नहीं है... यह सब है अपवादजयण।

इसमें बिमारी में भी लेश भी दोष लगाये बिना जल्दी वस्तु वापर लेना यह है उत्सर्ग जयण ! क्योंकि घरों में टॉनिक वस्तु मिलती हो, तो उसे ही वहोरना... उसके लिए थोड़ी ज्यादा चर्या करना... तो ये उत्सर्गजयण ! ये शक्य नहीं बने, तब आधाकर्म के बदले क्रीत दोष आदि दोष से चला लेना ये अपवादजयण !

(५) विहार में अजैन गांवों में उत्तरना पड़े, एक भी जैन घर नहीं हो, सब्जी-दाल नहीं मिले... उस समय रोटी-रोटे-छास-गुड आदि से चला लेना ये उत्सर्गजयण ! परंतु टीफीन-रसोई का उपयोग नहीं करना, वह उत्सर्गजयण। मानो कि इस तरह अजैनों को अनुकूलता नहीं हो अथवा तो कोई घर ही नहीं हो, सिर्फ हाई-वे हो... तो उस समय गांवी में टिफिन मंगाना पड़े, तो वह नजदीक के स्थान से ही मंगाना, दो-तीन आईटम ही वापरना, शक्य हो तो सुखी आईटम वापरना, जिससे आधाकर्म नहीं लगे... ऐसी अनेकानेक प्रकार की जयण है अपवादजयण !

पू.आ. नयमद्रसूरिजी विहारधाम में आधाकर्मी वापरने का हो, तब सिर्फ खिचड़ी-कड़ी बनवाते हैं क्योंकि खिचड़ी में चावल + मुँगदाल होती है और कड़ी में दहीं। ये सभी वस्तु अचित्त है, इसलिये इन सब में विशद्धना कम होती है। सिर्फ अद्वि आदि की विशद्धना ही बाकी रहती है, यह है अपवाद जयण !

(६) सिर्फ हिंसा के संबंध में ही यह जयण है, ऐसा नहीं है... परंतु झूठ आदि बाबतों में भी यह जयण है ही। बस, इतना ध्यान रखना कि हिंसा या

झूठ... इन सभी बाबतों में जयणा क्या ? यह ज्ञानी-गीतार्थ ही नक्की कर सकते हैं । अज्ञानी का ये काम नहीं है ।

(७) कोई भी बाबत हो, सत्य ही बोलना । जो हो वह ही बोलना, सरलभाषा में - नग्नभाषा में बोलना... ये है उत्सर्गजयणा ! शायद सत्य बोलना उचित नहीं हो, तो मौन रहना ये भी है उत्सर्गजयणा !

बालमुनि को लोच कठिन पड़ता हो, उस समय वह बारबार पूछता है कि “अभी कितना बाकी ?” तब उसकी समाधि के लिये बोलना पड़े कि “अब कम बाकी है...” आदि “तो उसमें जितना जल्दी हो उतना असत्य बोलना...”

ये है अपवादजयणा !

इसीतरह “अभी कितने कि.मी. बाकी ? अभी नवकारथी आने में कितनी देरी ? अभी गोचरी नहीं आई, कब आयेगी ?” ये सभी प्रश्न जब वे वे मुनि, मुमुक्षु अशाता-असमाधि के साथ पूछे, तब उन्हें शाता-समाधि देने के लिए असत्य बोलना पड़े... वह अपवादजयणा !

(८) मालिक को पूछे बिना उसकी वस्तु नहीं लेना, पूछकर ही उसकी संमति मिलने के बाद ही लेना, ये है उत्सर्गजयणा !

अचानक कुछ लिखना पड़े, अपनी बोलपेन नजदिक में नहीं हो या मिलती नहीं हो, एकाद वाक्य लिखना हो, बोलपेन जिनकी हो, वह मुनि वहाँ उपस्थित नहीं हो... तो तत्काल किसे पूछता ? तब अन्य साधु को भी कह देना कि “मैं इनकी बोलपेन एक मिनिट के लिए ले रहा हूँ ।” और इस तरह बोलपेन लेकर, उपयोग करके रख देना । वापस जब मालिक साधु आये, तब उन्हें बताना कि “आपकी बोलपेन एक मिनिट के लिए मैंने उपयोग में ली थी... परंतु आप उपस्थित नहीं थे और मुझे मेरी बोलपेन मिल नहीं रही थी, इसलिए आपकी यह बोलपेन लेनी पड़ी इसलिए आपको पूछ नहीं सका ।”

इसीतरह लेटरपेड, दंडा... आदि सभी वस्तु के लिए समझ ही लेना ।

ये है अपवादजयणा !

ध्यान रखना कि अत्यंत अरजन्ट काम आये, उस समय की ही ये बात है ।

(९) ब्रह्मचर्य की जो नौ वाङ है, उनमें लेश भी छूट नहीं लेना... ये उत्सर्गजयणा !

परंतु शरीर कमजोर हो, तो प्रणितभोजन = विगई भोजन लेना पड़े, शायद रोज लेना पड़े... ये है अपवाद्जयण !

विहार आदि में या अभी के उपाश्रयों में नीचे / ऊपर वॉचमेन-पुजारी-पंडितजी परिवार के साथ रहते हो, उनमें बहने हों... वह मन नहीं हो तो भी चलाना पड़ता है... परंतु सूर्यास्त के बाद वे कहीं नजार में नहीं आने चाहिए... ऐसी जयण रथने में आये वह अपवाद्जयण।

ऐसी अनेक बाबत गीतार्थमुनिओं के पास से जान लेना।

(१०) शास्त्रों में बताये हुए ही संयमोपकरण रथना... ये उत्सर्गजयण। अभी चश्मे रथने पड़ते हैं, तो एक/दो ही रथना, आकर्षक नहीं रथना, सीम्पल रथना... टेबल लिखने के लिये जल्ली हो, तो विहारादि में साथ में नहीं रथना... जहाँ जो मिले, उससे चलाना... ऐसी-ऐसी हजारों बाबत परिग्रह में है...

बोलपेन दो-तीन रथना, SIMPLE परंतु लिखने में अच्छी रथना, आकर्षक नहीं रथना, यह सब कुछ है अपवाद्जयण !

संस्कृत में जयण की व्याख्या करनी हो, तो

- सर्वदोषनिवारिणी चेष्टा उत्सर्गयतना ।

हिंसादि सभी दोष का निवारण करने की चेष्टा वह उत्सर्गयतना ।

- बहुतर-असत्प्रवृत्ति-विनिवृत्ति-साधिका चेष्टा अपवाद्यतना ।

बहुत ज्यादा ऐसी जो खराबप्रवृत्ति उसे दूर करनेवाली ऐसी (अल्पदोष सेवन से कार्य कर लेने रुप) चेष्टा वह अपवाद्यतना ।

श्री उपदेशमाला में इस अपवाद्यतना की महिमा गाई है...

कालस्स य परिणाणी, संजप्तजोग्गाइं नत्यि ख्रिताइं ।

जयणाए वृद्धिअव्वं, न उ जयण भंजए अंगं...

काल कमजोर है, संयम के योग्य क्षेत्र नहीं है, यतना से बर्ताव करना, यतना चारित्र के एक अंश को भी तूटने नहीं देती है ।

सार : यह काल है अति खराब ! संयम का १००% पालन हो, ऐसे क्षेत्र ही नहीं है । इसलिए हमें यतना पूर्वक प्रवृत्ति करनी । यानि कि कम से कम दोष से पूरा करना... यह यतना चारित्र का एक अंश भी तूटने नहीं देती ।

अगर उत्सर्गयतना चारित्र की रक्षा + वृद्धि करती है, तो अपवाद्यतना भी चारित्र की रक्षा + वृद्धि करती है ।

उत्सर्गयतना पालनेवाले को यह ध्यान रखना कि “उत्सर्गपालन का अहंकार नहीं आये और अपवादपालकों के प्रति दुर्भाव, शिथिलों के प्रति तिरस्कार नहीं आये ।”

अपवादयतना पालनेवाले को यह ध्यान रखना कि “अपवादपालन में शिथिलता घुस नहीं जाये । जितना दोष सेवन ज़रूरी, उससे लेश भी दोषसेवन बढ़ नहीं जाये + “मैं TOP यतना पालनेवाला” ऐसा अहंकार नहीं आये + उत्सर्गपालकों का सत्कार-सन्मान-यश-कीर्ति आदि देखकर ईर्ष्या जागृत नहीं हो + अपवादयतना की भी आलोचना बाटबाट लेना ही... उसमें लेश भी भूल नहीं हो... प्रमाद नहीं हो । अपवादयतना शुद्ध हो, तो भी आलोचना लेना, उसमें अतिचार हो, तो तो अवश्य लेना ही...”

- यह काल प्रायः अपवादयतना का ही काल है ।
- वैराग्य कच्चा होगा, तो अपवादयतना बहुत ही झङ्गप से शिथिलतारूप बन जायेगी ।

- इसलिये वैराग्यग्रन्थों का अभ्यास हमेशा चालु ही रखना ।
- गीतार्थ - संविद्ध महात्मा के प्रति अनहृद समर्पण रखना । मन से निश्चय करना कि “वे मेरे भगवान है, वो जो कहे, वह मुझे मानना ही । मेरी मौत आये, तो मंजुर ! परंतु उनकी आज्ञा का उल्लंघन नहीं कऱंगा...”

मैंने ज्यादातर साधु-साध्वीजीओं को नज़र में रखकर ऊपर की सभी यतनाएँ दर्शाई है... श्रावक-श्राविकाएँ भी खुद के जीवन के लिये यह यतना खुद समझे । उससे भी ज्यादा ये कि शक्त्य हो, तो संविद्ध-गीतार्थ गुरु को संपूर्ण समर्पित रहे... तो उनका भी आत्मकल्याण निश्चित है ।

॥ अहं नमः ॥
॥ नमोऽस्तु तस्मै जिनशासनाय ॥



स्मृतशिखर जी पर शीलमुनि रुक्मणी साध्वी को
हितशिक्षा देते हैं, परंतु रुक्मणी भूल स्वीकारती नहीं हैं
और मृत्यु पाती हैं...



**मुनिवर के पास पिता सूर्यशिव और
पत्नी + पुत्री द्वारा गर्भवती सूर्यशी पहोची है.....**